* खून के आंसू *

सम्पादक,

"कुमार"

प्रकाशक

पुस्तक—भवन,-पटना।

मूल्य आठ आना

प्रकाशक

युगलकिशोर

पुस्तक-भवन

पटना

आंसूओं की सुची

'समाज का अंकूस'—श्री शुरेश्वरजी पाठक।

'समाज का अत्याचार'—श्री कालिका प्रसादजी चतुर्वेदी।

'वीर युवक'—श्री कुञ्जबिहारीलाल जी अवस्थी, कुञ्ज।

'हीरा गोरी'—श्री पं० उदित मिश्र।

मुद्रक—

गिरजा-भूषण

दी-बिहार प्रिन्टिङ्ग प्रेस

सुलतानगंज, पटना।

समाज का अंकुश।

मृत्युके द्वार पर

(१)

भागलपुर

बहन सुधा, ता:- ——

बहुत दिनों से मैंने तुम्हें पत्र नहीं लिखा। तुम मन में सोचती होगी कि, कमला मुझे भूल गई होगी। लेकिन, बहन मैं तुम्हें जन्म भर नहीं भूल सकती। हाँ, तुम्हारे कई पत्र आने पर भी मैंने किसी पत्र का उत्तर नहीं दिया। यह मेरा गुनाह जरूर है। इस के लिये तुम्हारे सामने मैं अपराधिनी जरूर हूं। क्या तुम मेरे इस अक्षम्य अपराध को, छोटी तथा अभागिनी बहन के इस कसूर को माफ न कर दोगी? तुम्हारा हृदय उदार है-अतः मुझे पूरा विश्वास है कि, तुम इस अभागिनी पर तरस खा कर इसे अपनी दया दृष्टि से वंचित न रखोगी।

बहन, क्या करूं यह दुनियां बड़ी विचित्र है। यह अपार पाप का एक बृहत् कारखाना है. जहाँ चारो ओर पाप का लुभावना जाल बिछा हुआ है। मनुष्य अभाग्यवश

फलकी आशंका को त्याग कर इस जाल में आपसे आप फंसा जा रहा है। जो मूर्ख हैं, अपढ़ हैं, जो यह भी नहीं जानते कि, इस मोहक जाल में फंस जाने से फिर छुटकारा पाना सहज नहीं है, वे तो फंस कर ही आनन्द का अनुभव करते और अपने को भाग्यशाली बताते हैं। और अगर गौर कर देखा जाये तो उनकी यह प्रसन्नता कुछ हद तक ठीक भी है। जो यह समझते ही नहीं कि, हम पाप-पंक में फंसे हैं, फिर उन्हें पश्चात्ताप हो तो किस बात के लिए, चिन्ता हो तो क्यों? ऐसे ही मनुष्य बेफिक्र हो कर चिन्ता से दूर रह मस्त बने अपना जीवन व्यतीत कर ही लेते हैं,; परन्तु ठीक इसके विपरीत जो मनुष्य कुछ समझदार होते हैं, दो अक्षर पढ़ कर अपने को विद्वानों की श्रेणी में गिनने लग जाते हैं वे बिचारे तो उन मूर्खों से भी गये बीते हैं। अपनी अक्लमंदी का दावा रखते हुए भी इस जाल में खुशी खुशी फंस जाते हैं—दुनियां कोपापका कारखाना समझते हुए भी उसके यन्त्रों को संचालित करने में पूरा योग देते हैं। कहने का मतलब यह है कि, इस दुनिया रूपी पाप के कारखाने को चलाने के लिये पढ़े लिखे लोग ही इन्जिनियर, फोरमैन आदि बने हुए हैं तो अपढ़ बिचारे; कुलियों जैसा खटना जानते हैं। अतएव समझदारों को ही चिन्ता भी अधिक सताती रहती है. सुख तो उनसे कोसों दूर रहता है, अर्थात पढ़े लिखे व्यक्तियों से निरक्षर भट्टाचार्य कहीं ज्यादा चिन्तामुक्त और सुखी हैं।

बहन, क्या मैं व्यर्थका वेदान्त बघार रही हूं! नहीं सुधा,

यह व्यर्थका वेदान्त नहीं है। मैं आजकल दिनरात यही सोचा करती हूं कि मैंने व्यर्थ ही दस बीस पुस्तकों को पढ़कर अपने जीवन को निरानन्दमय बना दिया। अगर मैं आज पढ़ी लिखी नहीं रहती तो यह क्योंकर जान पाती कि, यह दुनिया क्या है? और अगर यह नहीं जानती तो आठों याम हृदय में धधकती हुई चिन्ता ज्वाला की लपटों से तो मुक्त रहती! अगर मैं मूर्ख होती तो मेरे हृदय में नाना प्रकार की भावनाएं, असफल अभिलाषाएं, स्वप्नवत् लालसाएं आदि घर न बनाती, जो आज मेरी चिन्ताके कारण हो रही हैं। मेरा हृदय बिल्कुल कोरा, निष्कपट और [illegible] रहता। तब मेरा अभिभावक, जैसा मेरे जीवन का नेतृत्व करते, उसी तरह गये गुजरे पशु की भांति मैं, 'हां हूं' कुछ नहीं कह कर, अपना आत्मसम्मान खोकर आडम्बरपूर्ण शिष्टाचार को बहादुरी के साथ निबाहते हुए अपनी जीवन को बिता देती। लेकिन अब तो मेरी हालत ही और है। मैं पढ़ी लिखी हूं, मुझमें आत्मसम्मान है, मुझमें स्वतन्त्रताका भाव भरा है, मगर केवल भाव ही है। हां इस भाव को कार्यरूपमें परिणत करने की क्षमता नहीं है। कमी है तो इसी बात की। तभी तो कहती हूं कि दुनिया में फैली हुई माया जाल में फंसने से जो हानि होती है इसे जानकर भी इनसे छुटकारा पाने के लिए प्रयत्न करने को असमर्थ हूं यह है मेरे हृदय की संकीर्णता। दिल में आज़ादी का

भाव रहते हुए भी परतन्त्र हूं—यही है मेरी गुलाम-मिजाजी या दास-मनोवृत्ति।

सुधा, मेरे जीवन की यह सत्रहवीं बहार है। सोलह तो बीत चुकी और सत्रहवीं भी जिस प्रकार चुपचाप आई उसी प्रकार जाना भी चाहती है—बिलकुल शुष्क, बिलकुल नीरस। सुनती हूं—गुलशन में जब बहार आती है, गुल खिल उठते हैं, बुलबुलें आनन्द के मारे चहूंक उठती हैं परन्तु जब बहार की बहार चली जाती है, गुलका नाम निशान मिट जाता है, तब बुलबुलें चीख मारकर रोती फिरती हैं और फिर बड़ी बेचैनी के साथ दूसरी बहार की बाट जोहती रहती हैं। मेरी हालत तो ठीक इस के विपरीत है। अंग अंग में यौवन बसन्त लहलहा रहा है पर बुलबुलों का तो पता नहीं। बहन! तुम मेरे कहने का आशय समझ गई होगी। भला तुम क्यों नहीं समझोगी! मेरी बच्ची तो हो नहीं, मुझसे भी उम्र में बड़ी हो, फिर विवाहिता भी हो: दुनियाका मजा चख रही हो। सच कहती हूं बहन, कभी कभी तो तुम्हें देख मुझे ईर्ष्या भी होने लगती है। इच्छा होती है, अपने जीजा जी को चुरा लाऊं और तुम्हें भी अपनी ही नाईं खूब तरसाऊँ, भर पेट रुलाऊँ और तुम्हारे साथ रो रो कर अपने जी की मुराद पूरी करूं। तुम्हारे साथ रोने भी मजा है।

मैं समझती हूं कि अब तुम मेरी दयानीय दशा से

परिचित हो गई होगी। अक्लमंदों के लिए इशारामात्र काफी है। अब कैसे कहूं कि आजकल मैं किस चिन्ता में बेमोर रहती हूं। चिन्ता तो ऐसी है कि न दिन को चैन और न रात को नीन्द ही आती है। हर घड़ी चिन्तारूपी नागिन का विष घुलघुलकर शरीर को सुखाने में ही परेशान है। क्या मेरा जीवन योंही सूखा नीरस और निष्प्रयोजन बीत-जायगा पता नहीं, ईश्वर ने क्या सोचकर पृथ्वीपर भार-स्वरूप मेरा जन्म दिया है। किसी दूसरे पत्र में फिर अपने दिल की बीती सुनाऊंगी-अभी इतना ही लिख कर सन्तोष करती हूं। जबतक तुम मेरे अपराध को क्षमा न कर देगी तबतक सच्ची हालत नहीं बताऊंगी।

तुम्हारी
अभागिनी बहन
कमला।

(२)

भागलपुर
ता: —— ——

बहन सुधा,

शायद तुम्हें यह जानकर बड़ी ही प्रसन्नता होगी कि आज से ठीक दश दिनके बाद तुम्हारी इस बहनकी माँग में भी सिन्दूर लग जायगा—यह भी उस दिन से अपने को विवाहिता कहने का दावा कर सकेगी; लेकिन अगर सच पूछो तो मुझे

अपनी इस शादीसे जरा भी खुशी नहीं है। तुम्हे बड़ा ही विस्मय होगा लेकिन इस पत्र को अथसे इति तक पढ़ जाने के बाद तुम्हारा आश्चार्य या तो बिलकुल दूर हो जायगा या अपनी सीमा का पार कर जायगा। मैं इस पत्र में आपबीती सुनाने का प्रयत्न कर रही हूँ।

आप बिती सुनाने के लिए मुझे कुछ दूर से आना पड़ेगा। सम्भव है, तुम्हें यह बेमौकेका प्रलाप प्रिय न मालूम हो मगर बिना कुछ दूर से आये, अपने पूर्व के कुछ वर्षों का हाल बताये मैं जो दिल में जो मसोस है उसे ठीक ठीक समझाने में असमर्थ हो जाऊँगी। अतः जरा सन्तोष और धैर्य के साथ अपने अमूल्य समयका थोड़ा हिस्सा, मेरे पत्र को पढ़ने में, मेरे हृदय की कसक जानने के लिए तुम्हें खर्च करना ही पड़ेगा। बहन, पहले मैं तुम्हें यह बता देना आवश्यक समझती हूँ कि, यह शादी मेरी इच्छा के विरुद्ध हो रही है और चूंके नारी जाति में जन्म ग्रहण करने के कारण मैं एकदम परतन्त्र हूं, जैसा कि मैं पहले पत्र में लिख चुकी हूं—इसलिये अपने पूज्य पिताजी के कार्य्य में हस्तक्षेप करने का मुझ में साहस भी नहीं है। अगर साहस भी करूं तो व्यर्थ जायगा —ऐसा मेरा विश्वास है।

तुम मुझ से अधिक बुद्धिमती हो। विवाहका रश्म किस उद्देश्य से अदा किया जाता है, भली भाँति जानती हो। मेरी समझ में तो विवाह एक ऐसा समाजिक रश्म है जिसमें

दो जीवों के हृदयका आदान प्रदान होता है, उनके पारस्परिक प्रेमका सूत्र दृढ़ किया जाता है और दोनोंके जीवनका पट परिवर्तन होकर एक नये जीवन का अरुणोदय होता है। तो क्या मेरा विवाह होना भी इन्हीं बातों का परिचायक है? कदापि नहीं, विवाह तो जीवन का सुप्रभात है। अतः व वरके इच्छानुसार वधू का और वधू के इच्छानुसार वरका मिलना नितान्त आवश्यक है, और तभी जीवन सुखमय हो सकता है। मगर दुख है कि हमारा समाज अदूरदर्शी, तथा पतित हो कर विवाह के उच्चतम आदर्शको भुलाकर ऐसी गन्दी रूढ़ियों के पीछे पड़ा हुआ है जिसका परिणाम बड़ा ही भीषण हो जाता है। समाजिक रूढ़ियों के पालन करनेके एकान्त इसने विवाह की मर्यादा भंग कर दी है। आजकल न तो वर के मनोनुकूल वधू और न वधू के मनोनुकुल वर मिलते हैं। फलत: विवाहोपरान्त वर वधू का जीवन आनन्दमय होने के बदले दुखप्रद और भारस्वरूप हो जाता है, प्रेम के बदले कलहका निरंकुश साम्राज्य छाया रहता है। भला कहो तो सही, ऐसे विवाह से विवाह न होना ही अच्छा है न! बहन, मैं विवाह न करूंगी, कुमारी रहकर ही अपने जीवनके शेष भाग का व्यतीत कर लूंगी। क्यों? बताऊं? अच्छा सुनो—

बात यह है कि, मेरा हृदय आज से दो वर्ष पहले ही दूसरोंके हाथ बिक चुका है। बहन, चक्कर में मत पड़ो। अपनी सच्ची कहानी कह रही हूं। बचपनमें मुझे पिताजी बड़े

न्याय से पढ़ाते थे। आर्य समाज के सिद्धान्तों के साथ सहानुभूति रखने के कारण वे समाज के ढंग से मुझे शिक्षा देने लगे। जब मैं अच्छी तरह पढ़ने लिखने लगी तब पिताजीकी इच्छा हुई कि, कोई योग्य और सुशील शिक्षक रख कर इसे अच्छी तालिम दी जाय। यद्यपि वे स्वयं मुझे शिक्षा देना चाहते थे लेकिन कार्याधिक्य के कारण ऐसा करने को असमर्थ थे। लाचारी वश उन्हें एक शिक्षक की तलाश करनी पड़ी। संयोगसे एक दिन उनके निकट एक गरीब कायस्थ के लड़के आये जो उस समय फर्स्ट ईयरके विद्यार्थी थे। वे पिताजी से कुछ आर्थिक सहायता मिलने की आशासे आये थे। पिताजी ने उनके सरल स्वभाव पर मुग्ध हो तथा उनकी असहाय दशा पर तरस खा कर कहा कि, अगर आप मेरे यहाँ रहकर मेरी कमला को कुछ पढ़ा दिया करें तो भोजन और रहनेका प्रश्न तो आपके सामने रहेगा ही नहीं; रही कालिज की फीस। यह भी आपको मैं दिया करूंगा। अन्धा चाहे आँख। वे झट पिताजी की बात पर सहमत हो गये। उनका रोम रोम पिताजी को धन्यवाद देने लगा। मुझे पढ़ाने का भार उनपर सौंप दिया गया। जबतक उन्होंने बी० ए० की परीक्षा दी तब तक अर्थात् चारवर्ष तक वे मुझे पढ़ाते रहे। स्वभाव के बड़े लजीले थे और इसी कारण पिताजी उनपर परम सन्तुष्ट रहा करते थे। मुझे भी उनकी संगति बड़ी भली मालूम पड़ने लगी। जब तक मैं निरी

भोली भाली बच्ची रही तबतक तो वे मुझे बड़े चावसे पढ़ाते रहे लेकिन जब मेरी उम्र तेरह चौदह वर्ष की हुई, मेरे चंचल स्वभावमें स्वाभाविक गम्भीरता पर आंखों में चंचलता की मात्रा बढ़ने लगी, मुझ में कुछ कुछ आकर्षण आने लगा तब मै स्वयं ऐसा अनुभव करने लगी की वे मुझे खुले तौर से पढ़ाने में जी चुराने लगे। वे कभी कभी पढ़ाते पढ़ाते झेंप से जाते थे। जब मैं उनके सामने जाती तो मुझे वे नज़र उठा कर देखने तकका साहस नही करते थे। जब वे मुझे देखते तो उनका शरीर काँपने लगता था और मुझ से कह देते थे—कमला, आज मेरी तबियत ठीक नहीं है, इसलिए आज नही पढ़ाऊंगा; जाकर सो रह। मैं बराबर इसी चिन्ता में रहती कि, आजकल उनकी ऐसी दशा क्यों हो जाती। है न तो पहले जैसा दिल से पढ़ाते हैं, न हँस हँस कर सीता, सावीत्री आदि की कथा सुनाते है। वे मुझे बड़ा प्यार करते थे और मै भी उन्हें जी जान से मानती थी इसलिए बराबर यह जानने की इच्छा लगी रहती थी कि, उन्हें कौन सा मानसिक रोग हो गया है; पर वे इतने गम्भीर और चतुर थे कि, अपनी मानसिक पीड़ा किसी प्रकार किसी पर प्रगट नहीं होने देते थे। बी० ए० की परीक्षा देकर वे पिता जी के निकट अपनी बिदाई लेने आये। पिताजी ने स्नेह भरे शब्दों में कहा—"रमेश, जाओ, ईश्वर तुम्हे सुखी रखें।" इसके बाद उन्होंने अपने कमरे में आकर अपना असबाब आदि बाँधना

शुरु किया। इस काम से निवृत होकर वे कुर्सी पर बैठे शांतचित्त से किसी विषम समस्या पर ध्यानमग्न हो विचार करने लगे। मास्टर साहब की अन्तिम विदाई सुनकर उनसे भेंट करने के लिये मैं उतावली हो दौड़ी हुई आई। मैं निस्संकोच भाव से कमरे में प्रवेश करना चाहती ही थी कि, उन्हें विचारमग्न देख ठिठक गई। उनकी मुखमुद्रा को खिड़की की राह से गौर का देखने लगी। मैंने देखा कि वे कुर्सीपर बैठकर, दुनिया की सुधि खो विचार समुद्र में गोता लगा रहे हैं। उनकी आंखों से कभी कभी आंसुओं की बूंदें टपक कर उनके सचिक्कन कोमल प्रदेश पर मोती के दाने की तरह बिखर रही हैं। अब मैं अधिक देर नहीं ठहर सकी। चुपचाप कमरे में प्रवेश कर कुर्सी के पीछे इस प्रकार खड़ी हो गई कि उन्हें पता भी नहीं लगा। इसी बीच येकायेक उनकी समाधि भंग हुई। दीर्घ उच्छ्वास भरकर वे बोल उठे—नहीं कमले; इस अन्तिम विदाई के समय तुम से भेंट नहीं करूंगा।' अरे यह क्या? मुझसे वे भेंट तक नहीं करेंगे। पर मैं कब पिण्ड छोड़ने वाली थी। पीछे से बोल उठी—'किस अपराध पर।' मेरी बात सुनकर वे सहसा चौंक उठे। शरीर से पसीने की बूंदें टपकने लगीं। एक अपराधी की तरह कँपी हुई आवाज़ में बोले—अरे, तू यहाँ कब और कैसे आ गई। मैंने तो देखा तक नहीं।

मैं—अभी तो आई हूं। पर आप मुझसे भेंट नहीं करने का निश्चय क्यों कर रहे थे?

मास्टर—नहीं कमले, तुमसे जरूर भेंट कर लेता पर…।

मैं—पर क्या ?

मास्टर—यही कि…। इतना कहते कहते मास्टर साहब की आंखें डबडबा आईं। ओह! वह दृश्य आज भी मेरी आंखोंके सामने चित्रवत अंकित है। मैंने कहा—यह क्या मास्टर साहब, आप रो क्यों रहे हैं? मास्टर साहबने अपने को बड़ी मुश्किल से संभाला और उन्होंने रुमाल से आंसुओं को पोंछते हुए कहा—कमले, आज मैं तुम लोगोंसे सदा के लिए विदा हो रहा हूं; परन्तु न जाने मेरा मन यहां से क्यों नहीं जाना चाहता है। इच्छा होती है, यहीं रहूं। तुम लोगोंने अपने प्रेम पाशसे मुझे इस प्रकार जकड़ लिया है कि, शीघ्र छुटकारा पाना भी कठिन हो रहा है।

मैं—अगर आप चले जायेंगे तो मुझे कौन पढ़ायेगा ?

मा०—कमला, क्या मैं तुमसे एक बात पूछ सकता हूं ?

मैं०—कौनसी बात।

मा०—यही कि मेरे जाने के बाद तुम मुझे भूल तो नहीं जायेगी ?

मास्टर साहब की इस बोली में करुणा और आहकी ध्वनि थी। वे बड़े मुश्किल से इतना बोल सके थे। यद्यपि मैं उस समय बालिका थी तथापि समय की परखसे एक दम कोरी नहीं थी। मैं भी अब अपने को संभाल नहीं सकी। मेरी आँखें भी सजल हो गईं। मैंने कहा:— यह क्या कह रहे

गुरुदेव ! मैं आप को इस जन्ममें कभी नहीं भूल सकती।

मा० अब क्या आज्ञा होती है।

मैं०—तो क्या सचमुच आप चले ही जाइयेगा ?

मा० क्या करूं परिस्थिति के फेर में पड़कर मनुष्य को इच्छा के विरुद्ध भी काम करना पड़ता है।

मैं—मास्टर साहब, मेरी तो इच्छा नहीं होती है कि मैं आप को यहाँ से जाने दूँ। मुझे तो ऐसा मालूम हो रहा है कि, आपके जाने के बाद मेरा घर ही नही बल्कि हृदय भी सूना हो जायगा।

इतने मे गाड़ीवान ने आवाज दी—बाबू, गाड़ी खड़ी है, जल्दी किजिए, । मास्टर साहब ने अपने असबाब को गाड़ी पर लदवाया। मैं चलते समय उनके पैर छूए और उन्हें अपनी एक अंगूठी दे कर कहा—जब आप मुझे भूल जायगे तो यह चिह्न आपको मेरी याद दिलायगी। वे अंगूठी लेकर गाड़ी पर जा बैठे। मैं खड़ी खड़ी देखती रही-वे भी अश्रु पूर्ण नेत्रों से मेरी ओर निहार रहे थे। गाड़ी खुल गई। वे बिदा हुए और मैं अपने कमरे में आकर मुंह ढाक कर रोने लगी—मेरा हृदय सूना हो हो गया। वे गये लेकिन मेरे दिलको भी चुराते गये। ऐसा भावुक चोर तो मैंने कभी देखा न था। बहन, उनकी मधुर स्मृति आज मेरे कलेजे में सालने वाली वेदना का संचार कर रही है, उनकी एक एक बात याद कर दिल बेचैन हो उठता है। वह सौम्य

वप ! वह गम्भीरता की सजीव प्रतिमा ! कैसा भला और मनोहर मुखड़ा था। गुण और रूपका संधिस्वरूप वह मूर्ति आज कहां चली गई बहन ! वह मनुष्य नहीं देव था क्या उस प्यारे मुखड़ेको अब कभी नहीं देख पाऊंगी ?

सुधा, केवल एकबार उन्होंने मुझे एक पत्र लिखा था वह प्यारा पत्र अब भी मेरे पास में सुरक्षित है, वही है मेरा वेद, वही है मेरा कुरान। मैं नित्य उसे पाठ किया करती हू। उन्होंने लिखा था — 'कमले! मुझे भूलने की कोशिश करो मै भूलने की कोशिश करूं! किसे ? अपने प्राण प्यारे को, अपने हृदय सम्राट को—बिलकुल असम्भव !! अगर वे एक बार भी मुझे दर्शन दें तो उन्हें फिर मैं कभी नहीं छोड़ सकती हूं।

प्रिय बहन, अब तुम्हीं बताओ: स्वच्छन्द वायु में पली हुई मुझ जैसी उश्छृंखल बालिकाको यह ब्याह कैसे पसन्द पड़े। कहा भी है।

प्रकृति मिलन मन मिलत है, अनमिलते न मिलाय।
दूध दही ते जमत है, कांजी ते फट जाय॥

इसमें सन्देह नहीं कि एक शिक्षित तथा सुधार प्रेमी होने के नाते पिताजी ने बहुत छानबीन कर वर ढूंढ़ निकाला है। केवल योग्य वर नहीं मिलने से ही १६, १८ वर्ष तक मुझे क्वारी रहना पड़ा। लेकिन इतने दिनों के अनुसन्धान के बाद भी पिताजी अपने काम में सफल नहीं हुए! सुना है.

लड़का अबतक मैट्रिक में ही पढ़ता है, अमीर खान्दान का शौकिन ज्यादा है—बिलकुल अप टू डेट। शायद उम्र मुझ से कुछ ही ज्यादा होगी। मेरी माँ को यह वर पसन्द नहीं है; चूंकि एक दिन बात के सिलसिले में वे पिताजी से बोल रही थी—'मुझे तो यह अनमेल ब्याह पसन्द नहीं है' पिताजी ने रूखे स्वर में उत्तर दिया—कमला के भाग्य में यही बदा था तो मैं क्या करूं। आज दो तीन वर्षों से तो लड़के की खोजमें कितनी गलियों कीखाक छान डाली परन्तु अभी समाज उतना आगे नहीं बढ़ा है। अकेले सुधार चाहनेसे ही क्या है, अकेले चना भाँड़ नहीं फोड़ता।

माँ—अगर अपनी जाति में योग्य लड़का नहीं मिलता तो परायी जाति का लड़का क्यों नहीं ठीक कर लिया। जात पात में आखिर रखा ही क्या है। तिसपर भी बराबर सुधार की डींग हाकते रहते हो।

पिता—कहा तो कि, अकेले सुधार चाहने से ही क्या होता है। एक तो इतने पर भी जाति वाले आर्यसमाजी कहकर बखेड़ा खड़ा करने में बाज नहीं आते, अगर विजातीय से कमला की सादी कर दूं तो यहाँ रहना भी प्रलय हो जाय।

माँ—सुधारक को तो इसकी परवाह नहीं होनी चाहिए।

पिता—व्यंग कर अधिक मत सताओ। तुम्हें हमारे समाज की जड़ता का क्या अनुभव ?

माँ— खैर, जो जीमें आवे करो, लेकिन मेरी तो यही

इच्छा थी कि, अगर रमेश कहीं मिल जाता तो उसीसे कमलाकी सादी कर दी जाती। बेचारा कैसा भला, सुशील गुणवान और सुन्दर युवक था, कमला के हृदयमें भी यही बात समायी हुई है।

पिता—यह बिलकुल असम्भव—एक ब्राह्मण की लड़की की सादी एक कायस्थ के लड़के से हो, यह भी सिद्धान्त रूप में है कार्य परिणत होने के लिए अभी दिल्ली दूर है।

मैं यह सुन कर मनहीं मन मसोस कर रह गई परन्तु रहे दिल्ली दूर। होता है वही जो कि मंजूर खुदा होता है। बहन बताओ इस सादी में मुझे प्रसन्नता क्यों कर हो।

तुम्हारी

अभागिनी बहन,

कमला।

भागलपुर

ता० -- --- -

[२]

बहन सुधा,

आज अपनी सादी के बाद श्वसुराल आकर मैं तुम्हें यह पहला पर अन्तिम पत्र लिख रही हूँ। मेरे व्याहके अवसर पर तुमने स्वयं उपस्थित होकर मुझे समझाने बुझाने की बड़ी चेष्टा की थी। मुझे अपनी बुद्धिमत्ता पूर्ण दलीलों

न परास्त करनेका भरसक प्रयत्न किया था। मैंने चुप चाप सब कुछ सुन लिया था। वही दलीलें आज मेरे हृदय को उद्वेलित कर रही है। तुम्हारी एक एक दलील मेरे अध्ययनकी सामग्री हो रही है। तुम मेरी यह पत्री पढ़कर सहसा चौंक उठोगी--पहली तो जरूर लेकिन अन्तिम क्योंकर! पर हाँ, यह मेरी अन्तिम पत्री ही समझो; क्योंकि इस पत्री के पहुंचते २ मैं इस मयात्री दुनियामें रहूंगी या नहीं इस में मुझे सन्देह है। सखी घबड़ाना मत; अपना प्यारी सखि कमलाके इस शीघ्रा-प्रसान से दिल धड़ काना मत। पहले इस रहस्य की बातें, अपने सहज कोमल और सुकुमार कलेजेपर पत्थर रख कर; उम्र ग्यासे रहित कर ध्यानपूर्वक सुन लो, पीछे मुझे भला बुरा कहना-परन्तु बहन, इनमें मेरा क्या दोष? साथ ही मैं किसी दूसरे को भी क्यों दोष देने लगूं। जो भाग्य में बदा वही हो रहा है और होकर ही रहेगा, कोई भी मानवी शक्ति इसे रोक नहीं सकती। अस्तु।

अपने ब्याह के बाद तुम्हारे ही सामने अपने बाप, माँ तथा तुम जैसी प्यारी सखिसे विदा होकर मैं यहाँ आई हूं। जिस समय तुमलोगों से मैं विदा हो रही थी उस समय मेरे मन मेंयह भावना कदापि नहीं थी कि, मैं अपनी अन्तिम विदाई ले रही हूं। हां, इतना अवश्य था कि, हृदय दबा कर ब्याह करने के कारण इसके भावी कुपरिणाम की कल्पना उस समय भी मेरेमानस कुटी में चिन्ता का एकान्त निवासस्थल

बनाने में सहायक हो रही थी। इस मग्नकुटी में आशा की स्नेह विहीन टिमटिमाती हुई दीप सिखा की चिन्ता की चिरव्यापिनी लहर से अवसान होना स्वाभाविक ही है। ओह! मैं आह भर कर उस अनोखी दीपशिखा की अन्तिम घड़ी देख रही थी—शिखा एकबार हृदय में जोरों से धधक उठी। मैंने आंखहीं अनुमान कर लिया कि इसका निर्वाण काल आया। मेरा अनुमान ठीक निकला। बची बचाई आशा ने सदाके लिए बिदाई ले ली। मैं श्वसुराल चली। रास्ते में एक कैदी की तरह बंद पालकी में मेरे मानस-सरमें तरह तरह की भावनाओं की तरंगे उठती थीं और फिर क्षण भर में विलीन हो जाती थीं। और सभी तो खुशी खुशी आ रहे थे परन्तु मैं उस छोटे से कैदखाने में अपनी जीवन के कंटकाकीर्ण मार्ग को नष्ट करने के उपायकी चिन्ता में मग्न थी। मैं कहां जा रही हूं-इसकी कल्पना मात्र से मेरी छाती धड़कने लगती थी। हाय, किस अमंगल घड़ी में मेरा पाणिग्रहण हुआ था। इस प्रकार मन और बुद्धि के साथ तर्क वितर्क करती हुई मैंने यही निश्चय किया कि बलासे मेरा व्याह हुआ ही तो क्या हुआ? अपनी इच्छा के विरुद्ध किये गये व्याह को व्याह समझ ही क्यों? उसी समय मेरे स्वच्छन्द हृदय प्रदेशमें अपूर्व बलका संचार हुआ। मालूम हुआ कि मेरे कानों में मानों कोई अज्ञातशक्ति मूक सन्देश पहुंचा रही है—कमले, यह बीसवीं सदी है, इस स्वतन्त्रता

के युग में मानव बुद्धि किसी की दासी होकर रह नहीं सकती। अब आँख कान मूंद कर बिना विचार अपने मूल गौरवका राग अलापकर अपने बड़े बूढ़ों को पदानुगामिनी बनने का समय नहीं है। अब इस देश में भी अन्य स्वतंत्र मुल्कोंकी नाई विचार विनिमय करने के प्रकाशमय सुप्रभात का अरुणोदय हो चुका है जिसमें मनुष्योंको मस्तवना देने वाली, दास्यवृत्ति की भावनाओं को दूर करने वाली, चिरकाल से सोई हुई मनोवृत्तियों को जाग्रत करनेवाली अकर्मीशयना के पंक में फँसे मनुष्यों को कर्म युग में खींच लेने वाली स्वतन्त्रता की मंद मंद वायु झकोरेमार रही हैं। इस वायु में मादकता है, मस्ती है, आकर्षण है, उद्बोधन है, कुछ भी हृदय तथा बुद्धि से सम्बन्ध रखनेवाला व्यक्ति इस ओर आकर्षित हुए बिना कभी रह नहीं सकता। कैसा सुवर्णान्विय मंगलप्रभात है। अगर अबभी युवक युवतियाँ प्राचीन रूढ़ियों के शिवभूवन कर अपनी दबी हुई आत्माओं न उठावेंगी, अपनी विचारशक्ति, बुद्धि और मस्तिष्कसे काम न लेंगी तो इस देशका दुर्भाग्य ही समझना चाहिए। अतएव अब इन लोकलज्जा का ख्याल न कर इस सुनहरे सुप्रभात में युवक युवतियों को क्रान्तिका भैरव राग अलापना प्रारम्भ कर देना चाहिए-तभी कुशल है।

इस मौन आदेशने मेरे हृदय में बलका संचार किया। मैंने सोचा—मेरी इच्छा के विरुद्ध मेरे माँ बापने मेरा ब्याह

क्यों किया। क्या वे मेरी इच्छासे अभिज्ञ न थे? ऐसा कौन सहृदय विश्वास करेगा? जब माँ-बाप में अपनी सन्तान के मनोगत भावों की परख करने की क्षमता न हो तो यह सन्तान के प्रति कर्त्तव्य से च्युत होने का प्रमाण है। पर अब होता क्या है? नहीं नहीं अभी क्या बिगड़ा है? मै अब भी अपने निश्चय पर दृढ़ क्यों न हो जाऊं। सामाजिक विधान के बंधनों से कोई मेरे शरीर पर भले ही जबरदस्ती अधिकार जमा ले लेकिन मेरी आन पर दखल जमाने के लिए सांसारिक रस्म रिवाज सफल नहीं हो सकते। किसी के साथ वैवाहिक रस्म अदा कर देने से ही उसके साथ सच्चे प्रेम का प्रादुर्भाव नहीं हो सकता है। प्रेमरूपी पवित्र नदी का उद्गमस्थान वह अन्तर्प्रदेश है जिसकी अधिष्ठात्री आत्मा उस अन्तर्प्रदेश से निकली हुई निर्मल प्रेमधारा में वही स्नान कर सकता है जिसे आत्मा की आज्ञा मिले अथवा जो अपने हृदय का सच्चा परिचय देकर आत्मा से उस धारा में स्नान करने की आज्ञा आत्मा से प्राप्त करने में समर्थ हो सके। कहने का तात्पर्य्य यह है कि प्रेम का सौदा करने के लिए शरीरका नहीं बल्की दिल की दुकानदारी करनी पड़ती है, शरीर की नहीं बल्कि हृदय की खरीद बिक्री होती है और इसके लिए रुपये पैसे के खर्च की आवश्यकता नहीं पड़ती, इसकी कीमत है-हृदय अर्थात् प्रेम शरीरका नहीं,हृदय का विनियम होता है और वह भी केवल एक बार बारबार

नहा मेरा हृदय भी एकबार किसी के हाथों बिक चुका है। अब दूसरे के हाथ कैसे बकेगा। अब किसी के साथ प्रणय का नाता जोड़ने का मुझे अधिकार ही क्या है ? बहन इन्ही उधेड़ बुन में मैं अपने श्वसुराल पहुंच गई।

श्वसुराल पहुंचने पर मेरे साथ भी वही व्यवहार किया गया जैसे प्रायः सभी नवविवाहिता या नवागता वधुओंके साथ श्वसुराल वाले पेश आते हैं। मैं मिट्टी की मूर्त्तिकी नाई एक कमरे में बिठा दी गई। गांव भरकी स्त्रियां झुड बांध बांध कर आने लगीं। मेरी सास मेरा घूंघट को सिर के ऊपर चढ़ा कर मेरे दर्शनाभिलाषिणियों को मेरा दर्शन कराती जाती थीं, मुझे आंख मूंद कर एकाग्रचित्त हो लोथ के समान बिना शरीर हिलाये डुलाये बैठे रहना पड़ता था। गरज कि मुझे सब कोई देखें और मैं किसी को नहीं देख सकूं। मैं बच्चों के खेलने की गुड़िया ही बन गई। सभी स्त्रियाँ मुझे देख देख कर मेरे सौन्दर्यकी आलोचना भी करती जाती थी। कोई कहती थी—चाँद ऐसी बधू है। कोई कहती थी—आखें कैसी बड़ी बड़ी कटोरी जैसी हैं। कोई कहती थी—शरीर में गहने भी खूब लदे हैं। कोई कहती थी—मनरीका का गढ़न बड़ा अच्छा है। कोई कहती थी कि और सब तो बहुत अच्छा है लेकिन नाक जरा चिपटी है। कोई कहती थी रामू की माँ, तुमे बहुतो सुलच्छन मिली है। इत्यादि। मुझे यह सुन कर मन ही मन

बड़ी हंसी आती थी। परन्तु साथही मुझे अपनी दशापर क्रोधभी आता था। खैर इसे तो मैं ने किसी प्रकार बर्दास्ती कर लिया, इच्छा न रहते भी इस अपमान को खून का घूट पीकर सह लिया।

अब मैं अपने अनिच्छित पति देव की हृदय विदारक कहानी सुनाती हूं। मैं पहलेही कह चुकी हूं कि अमीर परिवार में मेरा ब्याह हुआ। आजकल धनी परिवार के लड़कोंका जैसा आचार विचार होता है मेरे पतिदेव का चालचलन उस से भी एक डिग्री बढ़ा ही हुआ है। यों तो कहने के लिए वे मैट्रिकमें पढ़ते हैं लेकिन शायद ही कभी स्कूल जाते हैं। यहां पहुंचने के साथ ही मुझे यह भी मालूम होने में देर न लगी कि वे ब्याह के पहले से ही शहर की एक वेश्या के प्रेमपाशमें बंध चुके थे। पिता का दुलारा लड़का होने के कारण रुपये पैसे से पाकेट भरा ही रहता है। अत: प्रतिदिन दशबास रुपये उस वेश्या के यहां फूंक आते हैं। रातको तो कभी संयोग सेही घरपर रहते हैं यद्यपि घरवालों से यह बात छिपी नहीं है फिर भी कोई चूं तक करने का साहस नहीं करते हैं। जबसे मैं यहां आई हूं तबसे वे एक दिन भी मेरे निकट नहीं आये हैं। इस रहस्यका पता लगते ही मेरे शरीर मे तो आग बलने लगी। एकतो पहले से ही इस शादीसे मुझे घृणा थी ही. अबतो मेरा निश्चय और भी दृढ हो

गया। मैंने मन में ठान लिया कि इस निरान्त जीवन से मृत्यु लाख गुणा बेहतर है। मैंने कई रात तक अपने सूने कमरे में इस विषयपर गहरा मनन किया और अंतमें आज इस निश्चयपर पहुंची हूं कि, अब तो मेरे सच्चे हृदय देव से, मास्टर साहब से, भेंट होने की आशा करना आकाश कुसुमके तुल्य है और इस परिवार में भी मेरा गुजर असम्भव है, अतएव मेरा रहना इस दुनिया में बेकार है अभी रात के बारह बजे हैं। सारी प्रकृति निस्तब्ध है। मेरे पतिदेव अपनी प्रेयसी वारांगना के साथ कोठेपर गुलछर्रे उड़ाते होंगे। घरके सभी लोग चिन्ता रहित हो खर्राटे भर रहे हैं। मेरा कमरा खुला हुआ है जिसमें चांदनी की शुभ्र दुग्धशय्या बिछी हुई है। मैं चिन्ता मग्न हो तुम्हें पत्र लिखने बैठी हूं रह रह कर मास्टर साहब की सुधि आरही है। हाय, वह सलोनी प्रतिमा, जो एकबार मेरे हृदय में प्रेम का दीपक जलाकर न जाने कहां, किस ओर, किस अज्ञात प्रदेश में बसने के लिए चल दिये। स्नेह विहिन हो कर वह दीपक अब बुझने को है, तभी तो आज इसका प्रकाश विशेष रूपसे प्रकाशित हो रहा है, अगर मैं उनका ठीक पता जानती रहती तो इस अन्तिम घड़ी में एक प्रेमपत्री उन्हें लिखकर अपने हृदय की कसक मिटा लेती, पर मेरे फूटे भाग्य में जो बदा है, वही न होगा। तुम्हें यह पत्र लिखने के बाद मैं क्या करूंगी, वह भी तुम्हें लिख दूं। पर सुधा

मुझ अभागिनी के लिए चिन्ता मत करना। हां, कभी कभी याद जरूर कर लिया करना। इतना ही मेरे लिए बहुत है। बहन, क्या करोगी, भारतीय स्त्रियों की हीन दशा पर तो आज दिशाएं भी रो रही हैं,

मैं तुम्हें पत्र लिख कर इसे साथ लेकर इसी निस्तब्ध रात्रि में, हिन्दू समाज को शाप देती हुई, अपनी तथा अपनी ही जैसी भारत की अभागिनी बहनोंकी हीनावस्था पर आंसुओं की धारा बहाती हुई चुपचाप इस घर को छोड़ दूंगी, । अब नहीं रहा जायगा। घड़ी घड़ी यह घर मुझे काल सर्प की नाई काटने दौड़ता है। शरीर को कष्ट देकर, घुल घुल आत्मत्याग करने की अपेक्षा एक ही बार धीरज बांध कर अन्तिम सांस लेती हुई पुण्य सलिला माता भागिरथी की शान्ति दायिनी गोदमें चिर विश्राम ले लेना ही श्रेयस्कर है, मैं अभी चुपकेसे घर से निकल निर्जन पथ होती हुई सीधे डाकघर जाऊंगी। वहाँ डाक में इस पत्र को गिरा माता जान्हवी के पुनीत तट पर जाकर माता को प्रणाम करूंगी। फिर अपने हृदय के राजा को याद करती हुई। अपने माँ बाप की लाचारी पर दो दो बूंद आंसू टपकाती हुई माँ की पवित्र धार में सदाके लिए पड़ रहूंगी।

मुझे विश्वास है। गंगा मैया जरूर मुझे अपनी गोदी में स्थान देंगी। वे दयालु हैं। न मालूम कितनी ही आत्माएं सांसारिक झंझटों से ऊबकर तथा जीवन में निराशा

हो माँ की गोद में शरण पानेके लिए गयी होंगी, माँने किसी को शरण देने से आनाकानी नहीं की। तब क्या वे मेरी बारी में ही कठोर हो जांयगी। नहीं कभी नहीं। वे मुझे अवश्य अपनावेंगी। बहन, अब रात अधिक हो रही है। ज्यों ज्यों रात गुजरती जाती है। त्यों त्यों मेरी छाती की धड़कन भी बढ़ती ही जाती है। मृत्यु के द्वार पर खड़ी हो कर मैं तुम्हें अन्तिम प्रणाम कर इसी पत्रके द्वारा बिदाई लेती हूं। भूलना मत बहन। जीजाजी को प्रणाम कह देना। बस अब बिदा।

तुम्हारी,

अभागिनी बहन

कमला।

[१]

बहन,

भागलपुर

ता:—

पढ़ने को तो दूर रहे। अपनी कमला के इस पत्र को देखते ही तुम सहसा चौंक पड़ोगी। तुम तो मेरे नाम पर अन्तिम आंसू बहा कर निश्चिन्त हो गई होगी—केवल कभी कभी मेरी स्मृतिमात्र तुम्हें व्यथित भले ही करती हो। तुम्हें तो यह विश्वास हो गया होगा मेरी भाग्यकी मारी कमला पतितपावनी गंगा के क्रोड़ में शान्ति के साथ बैठकर पतित हिन्दू समाज को जी भर कर कोसती होगी लेकिन नहीं बहन

तुम्हे यह जानकर आश्चर्य के साथ साथ   भी जरूर होगी कि, तुम्हारी बहन गंगा में डूबते डूबते बच गई। मैं जानती हूं कि मुझे अबतक जीवित जानकर प्रसन्नता के पलने पर अठखेलियाँ करती हुई तुम जैसी मेरी अन्तरंग सखि तथा बड़ी बहनको यह जानने की भी कम उत्सुकता न होगी कि, मैं अपने प्राण को गवाँ देनेकी जागती हुई अभिलाषा के किसी प्रकार सुला दिया। यह रहस्य बड़ा विचित्र है। यद्यपि इसका रहस्योद्घाटन करने में मुझे भय तथा लज्जा दोनों ही हो रही है तथापि अपने संकोच को दवा, निर्लज्ज हो तुम से तो सारी कहानी जरूर कहूंगी इसी गरजसे तो यह पत्र लिखने बैठी हूं।

सुधा, तुम्हारे सामने अपनी रहस्य पूर्ण घटना का भेद खोलने में मेरा मन कभी कभी इस लिए दुविधा में पड़जाता है कि, उसे जानकर शायद तुम्हारे हृदय सरकी तरंगित आनन्द-लहरें एक व एक लुप्त प्राय हो कर उनके स्थान मे विषाद और करुणा की तरंगें टकराती हुई तुम्हें विह्वल बना दें हो सकता है कि, तुम्हारे हृदय मन्दिर के एककोने मे अबतक मेरे प्रति स्नेहका जो दीपक टिमटिमा रहा है. वह मेरे कलंकित तथा भ्रष्ट चरित्र का अभिशाप पाकर शंका तथा सन्देह की दूषित वायु के झंकोरे में पड़कर अचानक सदा के लिए बुझ जाय और तुम्हारे हृदय मन्दिर में घृणाका अनन्त अन्धकार फैलाकर तुम्हे और भी व्याकुल बना

है। तुम मुझे स्नेह के बदले घृणाकी दृष्टि से देखने लग जाओ। पर सच तो यह है कि, मेरे प्रति तुम्हारे हृदय में चाहे किसी भी तरह की भावना क्यों न उठने लगे तुम मुझे कुलटा और कलंकिनी ही क्यों न समझलो, मैं तुम्हें अपनी पूज्य बड़ी बहन जानकर सारी कहानी कहूंगी और दिल खोल कर कहूँगी। इसमें सन्देह नहीं कि मेरी करतूत देख दुनिया मुझ पर हंसेगी। क्या स्त्री क्या पुरुष सभी मुझ पर थूकेंगी, मुझे कुलटा तथा व्यभिचारिणी जैसे नामों से सम्बोधित करेंगे साथ ही दुनिया में रहने के कारण तुम भी मुझ पर तरस खाती हुई मुझ से घृणा करोगी परन्तु मेरा नादान हृदय तो अब भी यही कह रहा है—क्या हुआ, हंसने दो समाज के अन्ध विश्वासियों को, थूकने दो धर्म के ओट में अधर्म करने वालों को, तरस खाने दो अपने आत्मीयजनों को जो कुछ हुआ, अच्छा ही हुआ है। अगर समाजके विधानको मानकर अपने स्वच्छन्द विचार का अनुसरण करना ही—चाहे वह कितना ही उच्च तथा दुरुस्त क्यों न हो—अधर्म है, पाप है तो मैं अवश्य पापिनी या, चंडालिनी से भी बदतर हूं: मुझे पापिनी या चंडालिनी बनने में ही आनन्द है—स्वर्गीय सुख है। लेकिन अगर पाप या अधर्म की परिभाषा कुछ और है तो निस्सन्देह मैं पवित्रता और सतीत्व का दम्भ भर सकती हूं। खैर, इसपर विचार करने वाला समाज नहीं वही परवर दिगार है, जिसने समाजको संगठित करने वाले

मनुष्यों की सृष्टि की है। वही इसके न्याय करेंगे समाजिक विधान से ईश्वरीय विधान बढ़कर है। मैंने समाजिक नियमों को भंग किया है, ईश्वरीय नियमों का नहीं—साक्षी मेरी आत्मा है—दुनिया के लोग नहीं, तो हाँ, तो—उस रात में अपने जीवनसे निराश होकर मन्दाकिनी के दुकूलकी ओर चली। रास्ते में एक डाकघर पर दृष्टि पड़ी। तुम्हारी पत्र मेरे साथ था। मैंने उसे डाकमें छोड़ दी और अशांत चित्त से आगे पीछे देखती धीरे धीरे तटपर पहुँची। उस समय मेरे डवाँडोल हृदय पर भावनाओं और आशंकाओं के तूफान उठ रहे थे—चित्त डगमगा रहा था। सैकड़ों विचित्र विचित्र कल्पनाएं हृदय को आन्दोलित कर रही थी। तटपर पहुँच कर देखा—माता भागीरथी शाँत भाव से कलकल करती हुई प्रवाहित हो रही है—किनारे पर शीतल मंद वायु बह रही है। चारों ओर नीरवता का एकान्त राज्य है। मैंने मनही मन माता को प्रणाम कर कहा—"माँ आज यह अभागिनी भी तेरी शरण में आई है, और आई है अपने जीवनकी थकावट दूर करने के लिए, हृदय में जलती हुई व्यथाकी ज्वालाको तेरे शीतल जलस्पर्श से शाँत करने के लिए। मुझे भी अपनी गोदमें बिठाकर शाँति का अपूर्व पाठ पढ़ा माँ! अपनी स्वाभाविक उदारता दिखा कर मुझे भी अपनी कृपाकी भीख दे देवि!!" यह कहकर मैंने माँके शीतल जलको स्पर्श

किया और अपने डगमगाते हुए चित्तको स्थिर करने के लिए किनारे पर बैठ गई। इतने में जलके गर्भ से कुछ शब्द आकर मेरे कान में पड़े। सहसा मेरा ध्यान टूट पड़ा। मैं चौंक उठी। गौरसे देखने लगी कि, आवाज कहाँ से आई। चाँदनी रात थी ही, मुझे शीघ्र ही दृष्टिगोचर हुआ। कि नौका बड़ी तेजीके साथ मेरी ओर आ रही है। उसी नौकासे शब्द आ रहे हैं—"हाँ कोई स्त्री ही है। शीघ्र नाव किनारे लगाओ, चलकर देखें तो क्या बात है।" इन शब्दों को सुनते ही मेरे पैर के नीचेकी मिट्टी खिसक गई। काटो तो शरीर में खून नहीं। डर से तो मैं थर थर काँपने लगी। या मात, शुभकार्य में यह बाधा कैसी? अब कौन उपाय करूँ मनने कहा भाग चलो पर साहसने जवाब दे दिया। भयके मारे उठने तककी शक्ति नहीं रही। चित्रवत् ज्योंकी त्यों बैठी रही। बातकी बात में नौका किनारे लगी। मेरी आँखों के सामने बिलकुल अँधेरा छा गया। नौका से बाहर निकल कर किसी ने मुझे सम्बोधित कर कहा—"आप कौन हैं, अकेली यहाँ बैठकर क्या सोच रही हैं।" यद्यपि मैं भयभीत हो रही थी। लेकिन उन शब्दों ने मुझे विस्मित कर दिया। ऐसा भास हुआ कि, कोई चिरपरिचित शब्द मैं सुन रही हूँ साहसका संचारकर मैंने उस आगन्तुक की ओर भयभीत दृष्टि डाली। एक सन्यासी के वेष में, गेरुआ वस्त्र धारण किये, मुड़मुड़ाये श्वेतांग व्यक्ति सामने खड़ा पाया। ज्योंही

मेरी नजर उस पर पड़ी कि वह कांपने लगा और बड़ी ही उद्वेगपूर्ण दशा में जोरसे चिल्ला उठा—कमला। अब मुझ से भी न रहा गया। मैं अपने को संभाल न सकी; झट उस सन्यासीके कम्पित शरीर में यह कहती हुई लिपट गई— मास्टर साहब, मुझे बचाइए। मैं मृत्यु के द्वार............।' ओह! वह दृश्य कैसा करुण, कैसा आनन्दप्रद, कैसा अपूर्व था! एकान्त रजनी में, चांदनी की बिछी हुई धवल शय्या पर चिरकालसे दो बिछुड़े हुए हृदय का अनूठा मिलन—वह भी मृत्यु के द्वार पर। ऊपर चन्द्रदेव हँस हँस कर फूलों की वर्षा कर रहे थे और नीचे शान्ति प्रदायिनी मन्दाकिनी कल-कल शब्दों द्वारा मंगल गान कर रही थी और दोनों के प्रेम प्लावित हृदयोंद्गम से आंखोंके द्वारा आंसुओंकी एक दूसरी पावन गंगा बह रही थी।

अब मैं तुम्हें यह बता देने के पहले कि मैं काशी से यह पत्री कैसे लिख रही हूं—अपने मास्टर साहबके विषय में दो चार बातें लिख देना आवश्यक समझती हूं; बस, आपही समझ जायगी कि मैं काशी कैसे आई! मास्टर साहबने मेरे यहाँ से अन्तिम विदाई लेकर पटने आ, एक अखबारके सम्पादकीय विभाग में नौकरी कर ली। प्रारम्भ में ही अखबारी दुनियांसे उन्हें विशेष मुहब्बत थी। बचपन से ही देश-सेवा की सच्ची लगन लगी हुई थी। अतः अखबार के ही द्वारा अपने मन्तव्यकी आंशिक पूर्ति देख

उन्होंने वहां नौकरी पसन्द की। कुछ दिनोंके बाद घरवालों ने उन्हें अपना व्याह करने के लिये तंग किया; परन्तु मुझसे निराश होकर उन्होंने कौमार्य व्रत धारण कर आजीवन देश सेवा करने का निश्चय कर लिया था और व्याह करने पर किसी हालत में राजी नहीं हुए। घरके लोगों से तंग आकर उन्होंने सदाके लिए घर जाना छोड़ कर नौकरी को भी तिलाञ्जलि दे सन्यास ले लिया। गेरुआ वस्त्र धारण कर वे देश के कोने कोनेमें घूम घूम कर लोगों को स्वतन्त्रता का महत्व समझाने लगे। गुलामी की बेड़ी से जकड़ी हुई भारत माता को बंधन-मुक्त करने के लिए वे बेचैन हो गये और अंत में काशी आकर यहीं एक देश-सेवक-संघ की स्थापना की। स्वयं संघ के मन्त्री बने और काशी में ही रहने लगे।

उस दिन किसी आवश्यक कार्य्यवश वे मुङ्गेर आये थे और गर्मी के कारण अथवा यों कहो कि दिलकी किसी अज्ञात बेचैनी से ऊब कर चिन्ता को शान्त करने के लिए एक नौका भाड़ेपर ले कुछ मित्रों के साथ गंगाकी सैर करने संध्या समय निकले थे। कौतूहल-वश वे नौकापर हो उसपार चले गये जिससे लौटते समय रात अधिक हो गई। दैवयोगसे या मेरे भाग्य से उनकी नौका उसी समय गंगाके गर्भमें अठखेलियां कर रही थी जब कि, मैं अपना आत्मसमर्पण करने के निमित्त उसी जगह मृत्यु का दरवाजा खटखटा रही थी। उनसे मिलकर मुझे कितना आनन्द हुआ यह तुम अपने हृदयमें सोच सकती हो; मुझसे तो आनन्दावेश

में लिखा नहीं जायेगा। वे मुझे अपने साथ उसी दिन काशी लाये और तबसे यहीं अपने उसी आराध्यदेवके साथ आनन्दसे हूं जिसकी आराधना करते करते मेरे नेत्रके आंसू तक सूख गये थे। ओह! मैं कितनी भाग्यवती हूं सुधा! आज यद्यपि मुझपर दुनियाकी घृणापूर्ण दृष्टि पड़ रही है, फिर भी मैं अपने को भाग्यवती समझ कर फूली नहीं समाती हूं। मेरे राजा मुझे मिल गये–मृत्युके द्वार पर। दुनिया कुछ कहे, मुझे चिन्ता नहीं अब समाज से मुझे कुछ काम नहीं—सारा देश समाज है—देश से वही हम दोनों का धर्म्म है।

फिर कभी।

तुम्हारी कमला।

समाजिक-अत्याचार

अपने वैवाहिक जीवनके सम्बन्धमें दुःखिया रेवतीको को यदि कुछ भी स्मरण था तो वह इस प्रकार था।

वह एक दिन अपने पड़ोसमें दीदीके घरमें गुड़ियोंका खेल खेल रही थी। उस दिन गुड़ियोंका विवाह हो रहा था। उसकी गुड़िया थी और सुन्दरी का गुड्डा था। एक कोनेमें एक छोटासा मंडप बन रहा था। विवाह-कार्य्य लगभग समाप्त हो रहा था। रेवतीके छोटे भाई शंभोले बाजे बजाये थे और इसकी मजदूरीमें उसे खानेको बतासे

मिल थे। मिट्टीके अनेकानेक बर्तन दहेजमें दिये गये थे। विवाहके पश्चात बरात बिदा हो रही थी। एक छोटी भो पालकीमें वर और वधू बैठे थे और शिब्बो और छतुरी कहारों का काम कर रही था। इसी समय खेल कूदमें अकस्मात पालकी बच्चोंके हाथ से छूट पड़ी थी। रेवतीकी गुड़ियाका तो कुछ नहीं बिगड़ा था किन्तु सुन्दरीके गुड्डेकी टाँग टूट गई थी और उसका सिर पासमें पड़े एक पत्थरसे टकरा गया था। बच्चे शिब्बो और चतुरी सुन्दरीके मुखकी ओर देखके खिलखिलाने लगे। रेवती दौड़के अपनी गुड़िया संभालने लगी। बालक शंभो अपनी डफली बजानेहीमें मस्त हो रहा था कि इधर सुन्दरी इस घटनाको देखकर कुछ घबड़ा सी गई और तत्क्षण ही गम्भीर बनकर रेवतीके कान में कहने लगी। 'बहिन अब विवाहका खेल तो समाप्त हो गया और मेरा गुड्डा मर भी गया। तेरी गुड़िया भी उधर इस तरह राँड़ हो गई अब तो दूसरा ही खेल खेलना पड़ेगा।"

इधर अभी दूसरा खेल प्रारम्भ होनेके विचार हो रहे थे कि रेवतीका बड़ा भाई राजाराम वहाँ दौड़ता आया और रेवती को झटपट घर चलनेको कहने लगा। इस तरह आकस्मिक खेलके बन्द होनेसे कुछ मन दुःखी होकर रेवती घरकी ओर चली। ज्योंही वह घर के नजदीक बढ़ने लगी उसे वहाँसे रोनेकी आवाज आती मालूम देने लगी। [illegible]

आज अपने राजारामका चेहरा भी कुछ बदला नजर आता था। उसकी आवाज भारी थी, और वह अपनी बहिनके मुखको बराबर बार बार बड़े प्रेमसे देखके रो रहा था।

रेवती किसी प्रकार घर पहूँची। घर क्या था, श्मशान स्वरुप बन रहा था। वहाँ चारों ओर स्त्रियोंका समूह भयानक वेगमें चीत्कार कर रहा था। रेवती आश्चर्य्यमें थी कि यह जग देर में उसके घरमें ऐसा क्या उलट फेर हो गया है। इधर उसका घरमें पैर रखना था कि सभी स्त्रियां उसके उपर एक साथ टुट पड़ी। "हाय मेरी बेटी लुट गई! देवने मेरी सोने सी बिटिया बिगाड़ दी!" आदि २ शब्दोंसे उसका स्वागत होने लगा। उसकी माँ बिचारी बुढ़िया गोमती तो उसे देखते ही बीच आँगनमें पछाड़ खाके गिर पड़ी। उसके मुखमें केवल "हाय राम" की रटलग रही थी। यह सब देखकर रेवती भी रोने लगी थी, किन्तु उसकी समझमें कोइ बात न आइ थी। सब रोते थे इसलिये उसे भी रोआइ आ रही थी जरा एकान्त मिलने पर उसने अपनी सखी प्यारी से पूछा था कि "बहिन आज क्या होगया है" तब उत्तरमें उसकी सखीने उसके सिर पर हाथ फेरकर रोकर कहा था "बहिन तू रांड़ हो गई है।"

बालिका रेवती फिर भी जो कुछ समझ सकी थी व" यही था कि उसे अभी २ कही हुइ सुन्दरी की वह बात याद हो आइं "कि अब मेरा गुड्डा तो मर गया और तेरी

गुड़िया राँड़ हो गई अब तो नया ही खेल आरम्भ करना होगा।” रेवतीने भी इस पर केवल इतना समझ पाया कि अब मैं भी राँड़ हो गई हूँ। अस्तु, मेरे जीवनका भी कोई नया खेल आरम्भ होगा। किन्तु वह खेल कैसा भयानक होगा, कितना वीभत्स होगा, यह उस समय उस बिचारीने क्या समझा होगा? उस समय तक तो उसके जीवनकी सात वर्ष भी पूर्ण न हो पाई थी।

(२)

इसके लगभग आठ बरस बाद! जब रेवती अपनी ससुरालमें थी?

इस समय बालिका रेवती नवयौवना अब बन रही थी। उसका गुड़ियोंका खेल न होता था। उसकी सखी

स ेलिया और समझा लिया अब गुडियाके स्थान पर स्वयं अपने अपने खेलोंका आपसमें रङ्गीला वर्णन किया करती थीं। रेवतीके पास कहनेको क्या था ? वह इन सब बातों को ध्यानसे सुनती, उन्हें समझनेका उद्योग करती और ठंडी आह खींचकर रह जाती। उसे ऐसा मालूम होता कि "मेरे जीवनका कोई अङ्ग अपूर्ण रह गया है, मुझमें कोई कमी है, मुझे किसी वस्तुकी आवश्यकता है।" किन्तु वह न्यून क्या है और उसकी कमी किस प्रकार पूरी हो सकती है—यह सब उसकी समझमें कुछ भी न आता था।

रेवती हंसमुख और स्वभावतः सुन्दर प्रकृतिकी बालिका थी। हर बातमें उसे कुछ हास्यकी सामग्री मिल जाती। वह काम करती और और हंसती। वह चूल्हा फूकती और जब लकड़ी न जलती तो दुःखी होनेके स्थान पर खिलखिलाती, वह बच्चोंके साथ खेलती और उन्हें भी दिन रात हंसाती, शुरूमें तो उसकी इस सुन्दर प्रकृति पर किसीने कुछ न कहा। पर, धीरे २ उसकी सहेलियोंको उसकी यह आदत भी खटकने लगी और वृद्धाओंमें तो इसकी नाना भाँतिसे समालोचना भी शुरू हो गई। रेवतीकी ससुरालमें उसके प्रति सच्ची सहानुभूति किसीको न थी। उसकी सास यद्यपि दयालु हृदया थी किन्तु उन संस्कारों में पली थी जो मानती थी कि बधूके भाग्योंके कारण ही घरका भला बुरा होता है। जबतब वह सबके सामने आह खींचकर

सावित्री और सत्यवानकी कथा सुनाती कि उसने किस प्रकार अपने सत्यके जोर पर अपने सुहाग की रक्षाकी। "अब वह सत्य कहां है ?" साथमें वह इतना और भी कह देती। इन विचारोंके प्रभावके अतिरिक्त उसके घरमें उसके चित्तको आकर्षित करनेको उसकी अनेक अन्य बहुएं और उनके बाल बच्चे भी थे। उसके श्वसुरको तो दिन रात दुकानके कामोंसे ही फुर्सत न मिलती थी। उन्होंने खूब धन इकट्ठा कर रक्खा था, फिर भी उधर जरा भी विरक्त न थे। घरमें दूसरी देवरानी और जेठानीके हृदयोंमें रेवतीके प्रति छिपे हुए ईर्षाके भाव विद्यमान हो चुके थे। यह रांड़ है फिर भी हमारे समान खाती पहिनती और हंसती बोलती है" यह वे कैसे सहनकर सकती थी ? इसके अतिरिक्त उसने सौन्दर्य्य भी विशेष पाया था। इस कारण स्वतः ही सबक मन उसकी ओर आकर्षित हो जाता था। इसके अतिरिक्त संगी साथियोंके दिलजलानेको और आवश्यकता ही किस बातकी रह जाती है ?

(३)

एक साधारण दिन था। अकाश स्वच्छ था, लेकिन रेवतीके भाग्यकाशमें घनी काली घटा घिर रही थी, यह तब तक किसी को नही मालूम पड़ा जब तक कि घन घोर वर्षा-न हो गई और दुःखिया का भाग्य गली कूंचे का कीचड़ न बन गया।

उसके पड़ोसमें विलायत नामक एक मुसलमान युवक रहता था। उसकी विसातखानेकी एक दुकान थी और वह शहरके गुन्डोंमें प्रधान बन रहा था। रेवती पर उसकी नजर लग रही थी और मुहल्लेकी अनेक बिगड़ी स्त्रियां उसकी सहायता को तैयार थीं। वे भी कुलवधुयें थीं किन्तु रेवती की अवस्था को प्राप्त हो कर अपना सर्वस्व इन्ही

गुण्डोंके हाथ बेच चुकी थीं, और अब दूसरों को भी इसी अवस्थामें ले आने की इच्छा की थी। यही विलायतके कलुषित सन्देश रेवती तक ले जातीं, स्वयं सफलता पानेका सिर तोड़ परिश्रम करतीं किन्तु रेवती इनसे बची रहती वह यद्यपि विधवा थी, दुःखिया थी, तिरस्कृत थी और अपमान एवं अवहेलनाके बीचमें घिरी रहती थी किन्तु उस हिन्दू संस्कृतिमें पली थी जो पुर्नजन्म और कर्मोंमें पूरा विश्वास करती है।

उस दिन पूर्णमासी थी और सभी स्त्रियां जमुना स्नानको जा रही थीं। रेवती भी इनके साथ में थी। सब सहेलियोंने भली भाँति स्नान किया और फिर अपने २ सुहागके लिये प्रार्थनाकी। बेचारी रेवती क्या मांगती? उसने एक बार आकाशकी ओर देखा और फिर नीचे कालिन्दी पर दृष्टि दौड़ायी। चारों ओर एक ही रंग था। इस असीम और विस्तृत सुनसानमें उसे अपनी तुच्छता और असमर्थताका अनुमान हुआ और इस सबके परे एक बड़ी शक्तिकी कल्पना करके उसने प्रार्थनाकी कि "मेरा इहलोक तो बिगड़ चुका है, फिर भी जो कुछ शेष है उसे भली भांति निबाह देना ताकि दूसरा लोक तो सुधर जाय।"

इसके बाद सबने पंडाके पास रक्खे हुए अपने अपने नवीन वस्त्र धारण किये; जमुनाजीकी आरती उतारी, चन्दन और टीका लगाकर अपने अपने घरकी राह ली।

रास्तेमें सब प्रसन्न चित्त और अपने २ विचारोंमें तल्लीन घरोंकी ओर जा रही थीं कि स्त्रियोंको विलायत अपने एक और बदमाश संगीके साथ पीछे २ आता हुआ मालूम पड़ा। कुछ देर बाद कुछ स्त्रियों का ध्यान उधरको गया और उन्हें यह बुरा भी मालूम पडा। इस पर एक ढलती उम्रकी स्त्री किशोरी—जो बाल्यकाल हीसे विधवापनकी भट्टीमें जलकर उन अभागिनियोंमें शामिल हो चुकी थी, जिनका जिक्र हम ऊपरकर चुके हैं और जोकि स्वयं बिगड़ चुकी थी तथा दूसरों को बिगाडनेका यत्न किया करती थी—ने जरा डपटकर विलायतसे कहा,—"तेरा हमारे साथ २ इस प्रकार आनेका क्या काम है?"

"मां! आप क्यों नाराज होती हैं। मुझे जिससे काम है मैं उसीके साथ जा रहा हूँ।" यह विलायतने मुस्कराकर कहा।

किशोरीने फिर बिगड़कर कहा,—"रे बदमाश, कैसी बातें करता है? बता तो तुझे हम भले घरकी बहू-बेटियोंसे क्या काम है?"

इस पर विलायतने जरा कटाक्ष करके कहा, "आप भले घरकी बहू बेटियां हैं तो आपसे बोलता भी कौन है। यहां तो उसीके साथ साथ जा रहे हैं जिसने साथ आनेके लिये कहा है।"

इस पर सब एक दूसरेका मुख ताकने लगीं। सबके

चेहराका रंग उड़ गया कि न जाने यह दुष्ट किसका पानी उतार दे। एक गुण्डेकी काली करामतोंको समझकर उसे उचित प्रति उत्तर देनेकी बुद्धि और सामर्थ्य पिंजड़ेमें हर घड़ी बन्द रहनेवाली पर्दानशीनोंमें भला आ भी कैसे सकती है ?

उधर पहिले होसे सधी हुई किशोरीने फिर पूछा "अरे बदमाश बता तो कौनसी कलमुँहीने तुझे अपने मूंह लगाया और अपने कुलको डुबाने पर कमर कसी है ?"

इसके जवाबमें विलायतके व दोस्तने इस बार आगे बढ़ कर रेवती की ओर इशारा करके कहा, "आपलोग भी क्या अन्धेर कर रही हैं, हमारी दी हुई मोहरकी नजर स्वीकार करके जिसने अपनी साड़ीमें बांध रखी है, आप लोग हमें उसके साथ चलनेसे भी रोक रही हैं, यह कैसी बात है?"

इसपर सबकी नजर एकबारही रेवतीकी ओर घूम पड़ी। उसकी रेशमी धोतीके एक छोरमें बंधी हुई मोहर प्रत्यक्ष चमचमा रही थी। रेवती भौचक रह गई। वह न समझ सकी कि क्या मामला है और क्योंकर मोहर उसकी धोतीमें पहुँच सकी है? उधर संभ्रान्तरियोंकी सैकड़ों दृष्टियाँभी एक साथही उस पर टूट पड़ी। उनमें अब सन्देहात्मक भाव न थे, पापी के पापका प्रमाण पाके मानों वे उसे लाँछित कर रही थी। एक क्षणको वह सोचने लगी कि यदि धरती फट जाती तो मैं इसमें समा जाती।

(४)

औरतोंका दल-बादल रास्ते भर गरजता हुआ मुहल्लेमें पहुँचा। अपने २ घर जाने की किसे फिक्र थी, सब पहले रेवतीकी सासके पास पहुँचने की तैयारी कर रही थीं। चुपचाप और भयभीत हिरनीकी नाईं रेवतीभी उनके पीछे २ घरमें घुसने लगी कि किशोरी ने डपट कर कहा, "चल हट कलंकिनी! क्या तू अब इस भले कुलको भी डुबो देगी, तेरा अब इस घरमें काम नहीं है। जा और अपने चाहे जिस यारके साथ मुंह काला कर।"

दु:खिया सन्न होकर जैसीकी तैसी दबकर दर्वाजे पर खड़ी हो गयी। उधर औरतोंने घर पहुँच कर बावैला मचा

दिया। रेवतीकी जेठानी तो स्वयं साथ हीमें थी और सब बातें आँखोंसे देखती आई थी। बस, फिर प्रमाणकी आवश्यकता ही क्या थी! सब मामला सुन कर जो सासुजी वहाँसे बलबलाके उठी तो साथमें एक अधजली लकड़ी भी लेती गयी और द्वार पर पहुँचनेके साथ ही सैकड़ों भली बुरी सुना कर उन्होंने पटापट हाथ झाड़ना शुरू कर दिया। उसके केवल इतने शब्द मुंहसे निकले कि "माजी मैं बिल्कुल बेकसूर हूं और उस सुपकी अथवा मोहर की कोई बात कुछ भी नहीं जानती हूं।"

किन्तु वह नकारखानेमें तूतीकी आवाज थी, उसे कौन सुनता? बल्कि प्रति उत्तरमें जेठानीजीने गरज के यह सुनाया "न जाने कबसे मोहरें ले लेके अपने मां-बापको भेजती रही होगी। अब जा वहीं अपना काला मुँह कर और उन्हें अपनी कमाई से पोश" उधर दरवाजे पर मुहल्ले भरके पंचोंका अलग जमाव हो रहा था, किसीके घरमें आग लगती तब भी शायद इतने आदमी इकट्ठे न होते। किन्तु चटपटे मामलेके

विचारसे सभी लोग अपना अपना काम-धाम छोड़ के वहां जमा हो रहे थे। उनमें लगभग सभी तमाशबिन थे, मनमाना करनेवाले थे और धर्म और शास्त्रीय व्यवस्थाओंके नामपर झूठा भ्रम फैलानेवाले थे। किसी को घटना पर गम्भीरता पूर्वक विचार करनेकी न अकल

थी, न फ़ुर्सत थी बहुतेरे तो इसे उसके श्वसुरसे अपने पुराने बदले निकालनेका शुभ अवसर समझ रहे थे अस्तु, शाम तक वहीं पंचायत बैठी रही और उसका अन्तिम परिणाम यह निकला कि रेवतीको पहिली गाड़ी से एक नौकरके साथ उसके मां-बापके घर भेज दिया जाय और उनके श्वसुर के सिरका कलंक उतारनेके लिये उसपर ब्राह्मण और बिरादरीवालोंको भोजन करानेका थोड़ासा बोझ डाल दिया गया।

(५)

रेवती यद्यपि बहुत शीघ्र अपने मां बापके पास पहुंच गई किन्तु उसके कलंककी बात और भी विस्तृत रूपमें

न जाने कैसे उससे भी पहले वहां पहुंच चुकी थी। वही घर जिसे वह आज १५ वर्षसे अपना बतलाती थी और जिसके भीतर उसकी माता की सुखद बाहें हर घड़ी उसके लिये फैली रहती थी, आज उसके लिये हमेशा को बन्द हो चुका था। उसे पासके एक [illegible]नसान: मकानमें ठहरा दिया गया और एक नौकर जाकर प्रातः उसके पास आटा दाल पहुंचाने लगा। दिन रातमें उसे दूसरे आदमीकी सूरतभी नहीं देखनेको मिलती थी।

कुछ दिन बाद बहुत छिपकर पड़ोसियोंकी छत पर पहुंचके रेवतीकी माताने अपनी बेटीसे बातें की। माता का हृदय स्वभावतः ही अपने बच्चोंके प्रति प्रेम पूर्ण होता है और सचमुच स्त्रियांही स्त्रियोंके सच्चे दर्द को पहिचान सकती है। बुढ़ियाकी तो समस्त शंकायें जरा देरमें साफ हो गईं और उसका हृदय अपनी बेटकी यह दुर्दशा देखकर रोने लगा। किन्तु बिचारी कर क्या सकती थी। समाजके लोहे दंडके सम्मुख सिर उठानेकी किसकी सामर्थ्य थी? कुछ देर साथमें रोना धोना,—करके औरसान्त्वना के चन्द शब्द कहके वह भी वापस चली गई।

यद्यपि रेवतीके घरमें उसके साथ सहानुभूति दिखलानेको कोई नहीं आता जाता था किन्तु मुहल्ले के बदमाशोंके बुरे २ संदेश बराबर उसके पास पहुंच जाते

थे। हमारा वर्तमान समाज यद्यपि सन्देहमात्र पर अबलाओंका सर्वनाश करनेको उद्यत हो जाता है, फिर भी वह इन नारकीय पुरुषोंका कुछ भी नहीं कर सकता है और वे बराबर मूंछों पर ताव देते हुए स्वच्छन्दता पूर्वक स्त्रियोंके सतीत्वसे खिलवाड़ करते रहते हैं। इतना ही नहीं कि समाज इन लोगोंका कुछ कर सकनेमें असमर्थ हो, बल्कि यही लोग एक प्रकारसे प्राय: समाज मे अपनी सत्ता स्थापित कर बैठते हैं और इस प्रकार स्वयं दबे दबे नीचातिनीच कर्म करते रहने पर भी प्रकटमें समाज के सरपञ्च बने अपने फैसलेकी चक्कीमें बराबर बेगुनाहों और असमर्थों को पीसा करते हैं। वह कौनसी शुभ घड़ी होगी जब हिन्दू समाज इन दंभियोंके पंजेसे छुटकारा पावेगा। बस दुःखिया रैवतीके दु:खका किसीको ख्याल न था, बल्कि उसे दुराचारके दलदलमें फंसानेके लिये अनेक उसी के पड़ोसी निरन्तर उद्योग करते थे। रेवती चुपचाप सबकी बातोंको सुनती और मन-ही-मन समाजके इस अत्याचार और सबलों के ऐसे दुराचार पर आँसू बहाती तथा एक दीनानाथ का भरोसा रखके वह इन सबको सदा विमुख वापस करती। जितना दुख बढ़ता उतना ही उसका ईश्वर-विश्वास जबरदस्त हो जाता था। वह सोचती, "पिछले पापोंके फल स्वरूप तो मैं यह दुःख झेल रही हूँ, अब भी पुण्य के मार्ग से यदि

विचलित हो गई तो न जाने परलोक में भी क्या २ दुर्गति होगी।" उधर विफल मनोरथ होनेके बाद उसके पापी पड़ोसियोंमें प्रतिहिंसा की प्रवृत्ति जाग्रत होने लगी और वे सब प्रकारसे एक अनाथिनी को बरबाद करने पर तुल गये।

(६)

शुभ्र चाँदनी छिटक रही थी। संसारमें सभी लोग दुक चिन्ताओंसे विश्राम पा शान्तिकी गोदमें पड़े घुर्राटे भर रहे थे। किन्तु रेवती उस समय भी चारपाईपर पड़ी २ करवटें बदल रही थी। ठीक उसी समय चारों ओरसे 'चोर' 'चोर' का हल्ला होने लगा। साथ ही कितने ही आदमी लाठी ले ले के रेवती के द्वारपर उपस्थित

हो गये और कुछ लोग उसकी छतपर पहुँचकर चोरको गिरफ्तार कर लाये। यह चोर भी और कोई नहीं था वही विलायत बदमाश था।

सवेरे थानेमें रिपोर्ट हुई दारोगाजी तहकीकात में आये। उन्होंने मौका देखा। रिपोर्ट लिखी और जाँच प्रारम्भ कर दी। लगभग गांवके सभी स्त्री पुरुष वहां इकट्ठा थे। उनके सामने ही विलायतने रेवतीके घरमें रातको अपना जाना स्वीकार कर लिया, किन्तु साथ ही कहा कि मैं वहां चोरीके अभिप्रायसे नहीं गया था, अपनी बातके प्रमाणमें उसने एक रुक्का भी पेश किया, जिसमें लिखा था कि:--

"आप एक बार किसी समय आकर मुझसे मिल जाओ, मेरा जी बहुत घबड़ा रहा है।"—द० रेवती

रुक्केका पढ़ना था कि सब सन्नाटेमें आ गये। दारोगाजीने अब रेवतीके पिताको आड़े हाथों लेना आरम्भ कर दिया और अन्तमें पंचोंके बीचमें पड़नेके पश्चात हो कुछ ले-देके उनका पीछा छुटा। साथ ही पंचोंने यह भी फैसला कर दिया कि उस कलंकिनीको गांवसे निकाल दिया जाय।

इस घटनासे रेवतीके पिता स्वयं किसीको मुख दिखलाने लायक नहीं रहे। माताका मुख भी उस रुक्केने बन्द कर रखा था। फिर दुःखियाके दुखमें सहानुभूति दिखलानेवाला कोई कहांसे आता।

ग्लानि दुःखके मारे उस दिन कुछ नहीं खाया। वह अंसीकी तर्सा पड़ी पड़ी समाजकी निर्दयता पर रोती रही। उसका ईश्वर विश्वास भी अब शिथिल हो रहा था। रह रहके उसके मनमें विचार होता था कि लोग जिनको दीनानाथ के नामसे पुकारते हैं उनका इस संसारमें वस्तुतः कोई अस्तित्व भी है कि नहीं ? क्या वह कोरी कवि कल्पना है और संसारको ठगनेका ढंग है। यदि वे होते तो क्या मेरे दुःखोंका कभी भी अन्त न करते ?" सच है मनुष्यके विश्वासकी भी कोई सीमा है, उसकी सहन शक्तिकी भी एक हद है और रेवती अब उस हद पर पहुंच चुकी थी। अब अधिक सहनेकी शक्ति उसमें शेष न थी।

अभी वह इन्हीं विचारोंमें तल्लीन थी कि गाँव के भंगीने आके उसे पुकारा और कहा कि "गाँवके नम्बरदारका हुक्म है कि तुम अभी इस गाँवके बाहर निकल जाओ।" हाय कैसा भीषण अपमान है ! जिस गाँवकी भूमि देखनेको आँखें हर घड़ी ललचाया करती थी, उसी भूमिपर खड़े न रहनेका हुक्म उसे मेहतरके द्वारा भिजवाया जाता है। इस कल्पना के साथ ही रेवती कांपने लगी और क्रोधमें पागल होकर चुपचाप गाँवके बाहर निकल गई।

कुछ दूर चलकर एक आमके पेड़के नीचे 'अब' वह क्या करे और कहां जाय आदि बातोंपर विचार करनेको बैठ गई

यही आम का झाड है जहा वह अनेका बार गावकी स्त्रियोंके साथ गीत गाती हुई ग़ारी पूजन स लौट कर बैठा करती थी। ये कल्पनाये उसके दुःखी हृदय को व्यथित करने लगी। भाग्य विपरित होनेपर मनुष्यको छोटीसे छोटी चीज भी एक बिचित्र प्रकार की कोई पुरानी स्मृति उत्पन्नकारिणी बन जाया करती है।

उसे बैठे अभी अधिक देर न हुई थी कि गाँवके बदमाश वहाँ भी इकट्ठे होने लगे और अपने सन्देशोंको ठुकराये और कारण ही उसकी यह दुर्दशा हुई आदि ताने देकर उसके जले हृदय पर नमक छिड़कने लगे। इसबार रेवतीने कोपित सर्पिणी की तरह रोषके साथ उत्तर दिया कि तुम बड़े ही दुष्ट और नारकीय हो। एक अनाथिनी का इस प्रकार सताने में तुम्हें क्या मिलेगा और तुम परमात्माको क्या जवाब दोगे?

वह दुष्टोंका समाज इसपर खिलखिला कर कहने लगा कि हमारी फिक्र न करो। हम तो जब परमात्माके यहाँ पहुँचेगे निबट लेगें। अब तुम्हारा कहाँ ठिकाना है? जब गली और कूंचोंमें दरकी धूल चाटोगी, तब हमारे दिलोंका दुखानेका परिणाम मालूम पड़ेगा।

रेवतीने उन लोगोंका मुख देखने में भी अपना अपमान समझ कर उधरसे जो मुख दूसरी ओर फेरा तो उधर उसी बिलायत को अपने निकट हाथ जोड़े खड़ा पाया। उसे

अपने ओर रुख करते देख तुरन्तही बड़ी अर्जी बिनतीके साथ वह कहने लगा कि "ऐ सुन्दरी! अपने समाजके इन नाचीज कुत्तोंकी तुम हालत देख रही हो, जो तुम्हारे भाई बिरादर और संगी साथी बनके भी तुम्हारे सर्वनाश करनेको इस प्रकार उद्यत हैं और तुम्हारे इस कीमती जीवन और सुन्दर मानव शरीरके साथ खेलवाड़ करना चाहते हैं। मैं भी तुम्हारे सामने दोषी जरूर हूं किन्तु मैं तुम्हारे प्रेमका प्यासा फकीर हूं, मैं तुम्हें उम्र भर अपने हृदयकी रानी बनाके रक्खूंगा और स्वयं तुम्हारी खिदमत करूंगा। इन दगाबाजोंके समान तुम्हारे साथ पेश न आऊंगा। एक बार हिम्मत करके इस गुलामकी बात मान लो और अपनी जिन्दगीको जेल होनेसे बचा लो। तुम्हारे समाजमें कौन तुम्हारी ओर सहानुभूतिसे देखनेवाला है। यद्यपि मेरे कारण तुम अपमानित हुई हो किन्तु मैं तुम्हारे इन्हीं साथियोंकी सहायता कर रहा था। तुम्हारे साथियोंने तुम्हारी साड़ीमें मेरी मोहर बंधायी थी और फिर उन्हीं लोगोंने तुम्हें घरसे निकलवाया है और तुम्हारे ही पड़ोसियोंने मांको भेजी हुई तुम्हारी चिट्ठीको मेरे हवाले करके तुम्हें इस प्रकार यहांसे भी हटाया है। तुम इनके बीचमें रह कर किस प्रकार जीवन काटोगी और तुम्हे यहाँ क्या सुख प्राप्त होगा?"

समाजवालोंका सलूक वह देख चुकी थी, उसे अब कहीं

भी रहनेका ठिकाना नहीं है यह भी वह जान चुकी थी, साथ ही अपने समाजवालोंके दुर्व्यवहारने उसे उनकी ओरसे पागल सदृश बना दिया था। अस्तु, रेवतीने बिना कुछ अधिक सोच विचार किये आगे बढ़कर विलायतका हाथ पकड़ लिया और सामने खड़े अपने गाँव वालोंसे कहने लगी, कि तुम मुझे दर दरकी भिखारिन बनाने चले थे और अब तुम्हारे ही गांवमें तुम्हारे सामने रहूंगी। देखूं, किसकी मजाल है जो मेरी ओर आँख उठाके देखता है।'

विलायत अपनी बीबीके साथ कुछ दिन बाद उसी स्थान में रहने लगा, और घिसात खानेका सामान बेचकर अपनी गुजर बसर करने लगा। उसे पूरा गृहस्थ सुख प्राप्त था। और सब भले घर वालियां उसके घर बराबर आया जाया करती थीं। सब जानते थे कि उसके घरमें अब भी वही रेवती है किन्तु अब किसी की उसकी ओर अंगुली उठाने का साहस (!) न होता था, क्योंकि अब वह असहाय हिन्दू अबला नहीं रही थी, जो चुपचाप सबके अन्याय और अत्याचारोंको दबकके सहती रहती। इस समय वह उस दीनके भीतर पहुंच चुकी थी जिसमें एक सुदृढ़ संगठन है और जिसके कारण उनमें आपसमें हर एक स्त्री पुरुष राजा और रंकका विचार भूलके अपने साथियों के साथ सच्ची सहानुभूति रखता हुआ उनकी मददमें अपनी जानतक दे देने को तैयार रहता है।

वीर-युवक ।

रमेशदत्त बचपनसे ही विभीषिताकी गोद में पले थे। वे विपत्तिके साथ साहस और धैर्य्यसे काम लेते थे।

रमेशदत्तकी अवस्था २० वर्षकी थी। वह लम्बे कदके थे और शरीर अत्यंत हृष्ट पुष्ट था। इसी वर्ष उन्होंने बी० ए० की परीक्षा दी थी और गर्मीकी छुट्टियों में अपने घर लौटकर आये थे।

संध्या-समय था। भगवान भुवनभास्कर अस्ताचल की ओर जानेहीवाले थे। प्रकृति नीरव थी। दोपहरकी गर्मलू शीतल मन्द समीरके रूपमें परिवर्तित हो कर बह रही थी। ठीक इसी समय रमेशदत्त हाथमें छड़ी हिलाते हुए कस्बेके बहार धीमी चालसे टहल रहे थे। रमेशदत्त को वायु सेवनका स्वभाव बचपनसे था वह

प्रतिदिन सन्ध्या समय एक दो घंटेके लिये खुले मैदान मे अवश्य टहलते थे। टहलते टहलते रमेशका बिलकुल सन्ध्या हो गई अतः वे घर लौटनेका विचार करही रहे थे कि सहसा उन्हें भीषण चीत्कार सुनाई दिया। रमेश रोनेकी आवाज सुनकर जहाँ थे वहीपर ठिठुक कर इधर उधर देखने लगे। फिर वैसाही भयानक चीत्कार सुनाई दिया। उन्हें ऐसा मालूम हुआ, मानो कोई स्त्री चीत्कार रही है। अब वह उद्विग्न होकर, अपने मनमें विचारने लगे किधर जाऊं ? कुछ समझमें नहीं आता कि क्या मामला है? अन्त वे आवाजको लक्ष्य करके एक ओर चल दिये। सामने आमके वृक्षोंका एक सघन झुरमुट था। उसी ओरसे आवाज आ रही थी। ज्यों-ज्यों रमेश वृक्षोंके झुरमुटके नजदीक पहुँचने जाते थे, त्यों त्यों आवाज धीमी पड़ती जाती थी। मालूम होता था कि कोई किसी का गला दबाये देता था। कुछ ही क्षणमें रमेश झुरमुट के पास पहुंच गये। पूर्णिमाका चारुचन्द्र नील नभमण्डलमें उदय हो चुका था। उसकी शीतल किरणें वृक्षोंसे झांक झाँककर अपना क्षीण प्रकाश फैंक रही थीं। इस कारण वहाँ उस समय काफी प्रकाश हो गया था। रमेशने देखा कि एक बालिका जिसकी अवस्था १६ वर्षके लगभग थी और जो वस्त्रा-भूषणोंसे एक उच्च घरानेकी ज्ञात होती थी, बदमाशों

क चंगुलमें थी। दो बदमाश उसका सतीत्व नष्ट करने पर आमादा थे। किन्तु बालिका उन पापिष्ठोंसे अपना पिंड छुड़ाना चाहती थी। रमेश यह दृश्य देखकर क्रोधसे उन्मत्त हो उठे। उनकी आंखोंमें खून उतर आया जोशके मारे वह दांत पीसने लगे। आंखोंसे चिनगारियां निकलने लगी। अब वह थोडी देर भी न ठहर सके वायु वेगसे उन बदमाशोंके सम्मुख जाकर कड़ककर बोले —"क्योंबे दोजखी कुत्तो! यह क्या हो रहा है? जानते नहीं कि मैं तुम लोगोंकी मरम्मत करने लिये आ गया हूँ वह दोनों बदमाश रमेशकी विकराल मूर्ति देखकर सहम गये। कुछ क्षण तक दोनों चुप रहे तत्पश्चात् उनमेंसे एक बोला—'मियां जाइए, नहीं तो तुम्हारी भी हड्डी पसली यहां ठीक कर दी जायगी।"

इतनेमें दूसरा बोला—"काफिरकी इतनी हिम्मत, साला हमारे काममें रुकावट डालता है।" और वह करौला लेकर रमेशकी ओर झपटा। उसके हाथसे रमेशने करौली छीन ली और बोले—"अबे होशियार हो जाओ दोज़खमें जानेके लिये। इस करौलीसे तुम्हें मैं मौतके घाट उतारूंगा।" इतना कहकर रमेशने उन दोनोंका पीछा किया। किन्तु वे दोनों वहांसे नौ दो ग्यारह हो गये अब रमेश और वह बालिका वहांपर शेष रह गई। बालिकाकी आँखें रोनेके कारण लाल हो गयी थीं और

हित्रको आन लगी गीं। वह भयभीत दृष्टिसे रमेशकी ओर देखने लगी। रमेशने उसकी ओर देखकर नम्रतासे कहा—"बहन ! अब न रोओ, तुम्हें उन दोनो पापियोंसे छुटकारा मिल गया !"

बालिकाने डरते डरते पूछा "आप कौन हैं ?"

रमेश—"मैं इसी कस्बेका रहनेवाला हूं। मेरा नाम रमेशदत्त हैं। क्या आप भी इसी कस्बेमें रहती हैं ?"

बालिका—"हां !"

रामेश—"इन दोनों बदमाशो के चंगुल में कैसे फंस गईं !"

बालिकाने एक ठंडी सांस लेकर कहा—"क्या बताऊं !" इतना कहकर वह पुनः फूट फूटकर रोने लगी।

रमेश—"बहन ! रोओ मत। संकोच न करो !!"

बालिका—"मैं शिव-मन्दिरमें दर्शनको जा रही थी। साथमें कोई न था। अचानक दोनोंने जबरदस्ती मुझे पकड कर इक्केमें डाल दिया। यह काम उन्होंने बड़ी फुर्तीसे किया। उस समय आसपासमें कोई आदमी भी न था। मैं बहुत चिल्लाई भी, लेकिन इसके बाद उन दोनों दुष्टोंने मुखमें कपडा ठूंस दिया। मैं लाचार हो गई। उसी बेबसीकी हालतमें दोनों मुझे यहां तक लाये।" इसके बाद बालिका चुप हो गई।

रमेश—"खैर ! तुम्हारा भाग्य अच्छा जो मैं आ गया। अच्छा उठो, मैं तुम्हें मकान तक पहुँचा आऊं।"

बालिका उठ खड़ी हुई और रमेशके साथ-साथ चल दी।

(२)

पं० मदनचन्द्र शर्माने विस्मय पूर्वक अपनी स्त्री से पूछा "आज सुमित्रा नहीं दिखलाई देती। पड़ोसमें किसके यहां गई है ?"

स्त्रीने कहा—"सन्ध्याको शिव-मन्दिर गई थी, लेकिन इतनी रात बीतने पर भी जब नहीं आई है, तो मैंने हरखूको मन्दिर भेजा है।"

शर्मा—"मन्दिरमें भला क्या बैठी होगी ?"

स्त्री — "तो फिर कहां गायब हो गई ?"

शर्मा—"मैं कहां बताऊं ? तुमने उसे अकेले जाने ही क्यों दिया ? तुम्हें सैकड़ां बार मना किया कि उसे अकेले कहीं भी मत जाने दिया करो, लेकिन तुम तो मेरी बातकी तनिक भी पर्वाह नहीं करती। उसीका यह नतीजा है कि वह इतनी देरसे लापता है। कहीं पता नहीं है।"

स्त्री—"मैंने आज ही उसे अकेले जाने दिया था।"

इसी समय हरखूने आकर कहा—"मालकिन, सुमित्रा मन्दिरमें नहीं है।"

अब शर्मा तथा उनकी स्त्री की चिन्ता और बढ़ी।

स्त्रीने कहा—"कहीं रास्ता तो नहीं भूल गई।"

शर्मा—"ठीक, रास्ता क्या भूल गई होगी।"

स्त्री-आने दो आज मैं उसकी कैसी खबर लूंगी।"

शर्मा क्रोधित होकर बोले—"इसी तरह तो लड़कियां आवारा और चरित्रहीन हो जाती हैं।

इसी समय सुमित्राने रमेशके साथ घरमें प्रवेश किया। शर्मा जी उसे देखते ही डपट कर बोले "अब तक कहाँ लापता थी ? शामसे घरसे निकली, अब रातको ६ बजे लौटी है।"

सुमित्रा पिताकी डपट सुन कर फूट फूट कर रोने लगी उसे बोलनेका साहस न हुआ। वह चुपचाप भयभीत हो मौन धारण किये जहां की तहाँ खड़ी रही।

रमेशने कहा-"महाशयजी, आज आपकी लड़की बड़ी विपत्तिमें फंस गइ थी । ईश्वरके अनुग्रह हीसे उसे विपत्ति से छुटकारा मिला है ।"

शर्म्मा जीने अत्यंत उत्सुकतासे पूछा—"क्यों क्या हुआ? जरा साफ साफ कहिये ।"

रमेशने शुरूसे आखिर तक सारा वृतान्त कह सुनाया। शर्म्मांजी तथा उनकी स्त्री काष्टवत् बैठा सारा किस्सा सुनती रहा ।

शर्म्मा जी बोले-"धन्यवाद है आप को, जो आपने सुमित्रा का छुटकारा किया ।"

रमेश किञ्चित लज्जित होकर बोले-धन्वाद देने की आवश्यकता नहीं है । अच्छा मुझे आज्ञा दीजिये ।

अब शर्म्माजी अपनी स्त्रीकी ओर मुड़कर बोले-"क्यों सुमित्रा तो अब घरमें रखने योग्य रह नहीं गइ ।"

स्त्री—"बक रहे हो? मैं अपनी सुमित्रा को नहीं छोड़ सकती । वाह? क्या सुमित्रा छूत हो गई है ।"

रमेश भी लौट कर शर्म्मासे बोले-"क्यों? क्या बदमाशोंके स्पर्शमात्र ही से सुमित्रा छूत हो गई ।"

शर्म्मा—"और नहीं तो क्या?

स्त्री-"बिटिया तू इधर आ । इन्हें बकने दे ।"

शर्म्माजी स्त्रीसे डपट कर बोले—"तुम चुप रहो बोलने की जरूरत नहीं है"

इधर, सुमित्रा त्यागनेकी बात सुनकर सहम गई। उसका सम्मुख संसार अंधकारमय हो गया। उसकी पवित्र आत्मा विलख विलख कर रोने लगी ? उसके हृदयमें एक साथ नाना प्रकारकी भावनाए उठने लगीं। भविष्यकी चिन्ताने उसे भयभीत कर दिया। उसने स्नेहपूर्ण दृष्टिसे माता पिताकी ओर देख कर करुणापूर्ण शब्दोंमें चिल्लाया "माता-माता मुझे न त्यागो ! पिता मैं कहां रहूँगी ?

माताका वात्सल्य स्नेह उमड़ पड़ा। उसकी आंखोंमें आँसू भर आये। पुत्रीकी ममताने उसे व्याकुल कर दिया वह सुमित्राके गले चिपट कर बोली "बिटिया मैं तुझे अलग न होने दूंगी।"

शर्म्माजी यह देख कर गरज कर बोले—"यह कभी नहीं हो सकता। कुल कलंकिनी ! तू म्लेक्षोंके हाथमें पड़ कर विधर्मिनी हो गई है। मैं तुझे किसी हालतमें घर पर नहीं रख सकता। जहां तेरा दिल चाहे वहाँ जा।"

सुमित्रा और अधिक फूट फूट कर रोने लगी।

रमेश—बोले पण्डितजी आप गल्ती कर रहे हैं।

शर्म्माजी "आपसे कोई प्रयोजन नहीं। आप मुफ्तमें बहस करते हैं।"

रमेश "आप यदि इसे त्याग देंगे तो बेचारी कहां जायगी।"

शर्म्मा—"भाड़में जाये।"

सुमित्रा करुणापूर्ण दृष्टिसे रमेशकी ओर देखने लगी। रमेश उसे धैर्य प्रदान करते हुए बोले—"बहन रोओ मत। मैं तुम्हें स्थान दूंगा! उठो चलो मैं तुम्हें अपने घरमें रहने दूंगा।"

सुमित्रा माताके पैर पकड़ कर रोने लगी। किन्तु शर्माजी ने बलपूर्वक उसे घरके बाहर निकाल दिया। माता ज्योंकी त्यों रोती कलपती रही।

(३)

उसी समय, उसी रात्रिको युवक रमेशने आश्रयहीन बालिका सुमित्राको अपने घरमें आश्रय दिया। रमेशकी माताने सुमित्राको देखकर पूछा—"यह कौन है?"

रमेशने उत्तर दिया-"एक आश्रयहीन दुःखिनी बालिका।"

चार पाँच दिनों तक तो सुमित्राके लिये रमेशकी माता ने कोई एतराज न किया, किन्तु इसके उपरान्त माताने सुमित्राको घरमें रहने के लिये रमेशसे आना-कानी की।

माताने रमेशसे कहा—"बेटा क्वारी लड़की घरमें रखना ठीक नहीं। तूने न जाने कहांकी बला अपने सर लेली। जिस प्रकार हो उसे यहाँसे दूर करना चाहिये।"

रमेश—"माता! आश्रय में आई हुईको मै कैसे निकाल सकता हूं। दूसरा मैंने उससे प्रतिज्ञा भी की है कि मैं उसे अपने घरमें रहनेके लिये स्थान दूंगा।"

इतनेमें रमेश के पिता वहां आ पहूँचे। आते ही रमेशसे बोले—"यह मै मानता हूँ लेकिन कलको अदा उसका व्याह कौन करेगा? जरा कुछ दूरकी भी सोचा कर।"

रमेश—"ऊंह व्याहकी कोई चिन्ता नहीं है। व्याह करना कठिन नहीं है। व्याह भी कर दिया जायगा।"

पिता—"तेरे लिये तो सब कुछ सहल है। कहने और करने में बड़ा भेद है। जैसे बने उसे घरसे अलग करना चाहिये।"

रमेश—"पिताजी, आप ऐसा न कहें। वह बेचारी फिर कहाँ जायगी।"

पिता—"यह वह जाने।"

रमेश—"नहीं पिताजी, मेरी प्रतिज्ञा न भंग कराइए।"

बातों ही बातोंमें रमेशके पिता रमेशके हठपर क्रोधित हो

गये। वह बोले बड़ा प्रतिज्ञा निबाहने वाला बना है। मैं जैसा कह रहा हूं तुझे वैसा ही करना होगा।"

रमेश हाथ जोड़कर बोले—"पिताजी आप इस विषयपर अधिक जोर न दें।"

पिता—"तू बड़ा जिद्दी है।"

रमेश चुप होगये।

पिता बोले—"देखो कल वह जरूर घरसे अलग हो जाय।"

रमेश अधिक विनम्र होकर बोले—"नहीं पिताजी.. ।"

पिता क्रोध के आवेशमें बात काटकर बोले—"चुप रह। बकबक लगाये है। तेरी एक नहीं चल सकती।"

रमेश निरुत्तर थे।

पिताने पूछा—"बोल, तुझे मेरी बात मन्जूर है?"

पास ही बैठी माताने रमेशको समझाते हुये कहा—"बेटा! क्यों जिद् करता है। पिताकी बात माननेमें तेरा क्या नुकसान है?"

रमेश दृढ़तापूर्वक बोले—"मैं उसे अलग नहीं कर सकता। आश्रयमें आ हुये मनुष्यको अलग करना मैं घोर पाप समझता हूँ।

पिता किटकिटा कर बोले—"तुम बड़े नालायक हो। अपने आगे किसी की सुनते ही नहीं। अच्छा! मत उसे निकालो। खूब अच्छी प्रकार उसे आश्रय दो, लेकिन अलग किसी दूसरे मकानमें रह कर। कल ही तुम भी कहीं दूसरी

जगह रहने का ढूँढ लो। मैं तुम्हारे जैसा मूर्ख पुत्र नही चाहता। बस, हो गया। मैं तुमसे घृणा करता हूँ। चल, हट निकल मेरे मकानसे कल ही।" कहते हुए पिता वह से चले गये।

माताने रमेशको खूब समझाया, किन्तु रमेश अपने विचार से जरा भी न हटे।

(९)

रमेशने अपने माता पिता एवं मकानको त्याग दिया। उन्होंने वह कस्बा भी छोड़कर, पासही के एक शहरमें, अपने मित्र रघुनाथराव के यहाँ शरण ली। शीघ्रही उन्हें एक आफिसमें ६०) रु० की नौकरी भी मिल गई और वे आनन्द पूर्वक सुमित्रा सहित अपना जीवन व्यतीत करने लगे। रमेश

तथा सुमित्रा दोनों ही अविवाहित थे। रमेशकी अवस्था २१ वर्षकी और सुमित्रा की १७ वर्षकी थी।

एकदिन रघुनाथ-ाव रमेश से बोले— 'बहन सुमित्रा अब ब्याहने योग्य हो गई है।"

रमेश—"मित्र! उसके लिये मैंने कई बर ढूंढे हैं, किन्तु आर्थिक कठिनाईके कारण ब्याह रुका हुआ है। अभी मैं इस योग्य नहीं हूं कि उसके ब्याहमें हजार दो हजार रुपया व्यय कर सकूं।"

रघु०—"यह तो तुम्हारा कहना ठीक है, किन्तु उसकी अवस्था अधिक होती जाती है।"

रमेश—"फिर क्या करूं?"

"तुम्हो उसे ब्याह लो।" रावने दबी जबान से कहा।

रमेश बिगड़ कर बोले—"क्या कहते हो, कहीं बहन से भी ब्याह होता है?"

रघु०—'तुम्हारी सगी बहन तो है नहीं—उससे ब्याह करना बुरा थोड़े ही है।'

रमेश—'मैं ऐसा न करूंगा।'

रघु०—"क्यों?"

रमेश—"हृदय ऐसा करने की आज्ञा नहीं देता।"

रघु०—"यदि सुमित्रा स्वयं ऐसा करनेको उत्सुक हो तब क्या करोगे?"

रमेश—'व न सुमित्रा कभी ऐसा विचार तक अपने हृदय में न लायगी।"

रघु०—"थोड़ी देरको मानलो कि यदि वह ऐसा ही करना चाहती हो तब ?

रमेश—"असम्भव बातको कैसे मानलूं।"

रघु०—"यदि मै विश्वास दिलादूं।"

रमेश गम्भीरता पूर्वक बोले—"विश्वास दिला दोगे, तब देखा जायगा।"

रघुनाथराव अट्टहास करके बोले—"नहीं साहब! अभी आपको विश्वास दिलाता हूं।" यह कहकर उन्होंने एक लिफाफा जेबसे निकाल कर रमेशके हाथ में देते हुये कहा "लीजिये इस पत्रको पढ़िये।"

रमेश लिफाफे से पत्र निकालकर उत्सुकतापूर्वक पढ़ने लगे। उसमें लिखा था:—

"भैया रघुनाथराव!

सादर प्रणाम, मैं आपसे कुछ बातें कहना चाहती थी, किन्तु लज्जावश सन्मुख न कह सकती थी। अतः इस पत्र मे साफ साफ लिखती हूँ। मैं अब पूर्ण ब्याहने योग्य हूँ। रमेश कही न कही, मेरा ब्याह अवश्य करेंगे। किन्तु मैं तो रमेशही को अपना सर्वेश्वर मान चुकी हूं, उस समय से जब कि उन्होंने मेरा दो बदमाशोंसे छुटकारा किया था। यद्यपि अभीतक मेरे तथा उनके बीचमें भाई बहन जैसा ही सम्बन्ध रहा है। आप उनके परम मित्र हैं। इसलिये मैं चाहती

हूं कि आप इस विषयमें उनसे बातचीत करें। अधिक क्या लिखूं ?

आपकी बहन,

सुमित्रा।"

रमेश पत्रको पढ़कर अवाक् रह गये। वह बोले—"मुझे आश्चर्य होता है।"

रघु०—"अब तो तुम्हें विश्वास हो गया होगा।"

रमेश—"जरूर, क्योंकि पत्र सुमित्रा द्वारा ही लिखा गया है। उसके अक्षरोंको मैं भली भांति पहचानता हूं।"

रघु०—अब तुम्हारा क्या विचार है?"

रमेश—"जो तुम्हारा विचार है।"

रघु०—"अच्छा, तो, ब्याह वैदिक रीतिसे होना चाहिये और उसके तथा तुम्हारे माता पिताको ब्याह की सूचना भी दे देनी चाहिये।"

रमेश—"बहुत ठीक।"

हीरा गौरी

—○—○—

"हिन्दू हो या मुसलमान, हम तो अत्याचारके विरोधी हैं। हम बुरे हिन्दू को बुरा और अच्छे मुसलमानको अच्छा ही कहेंगे। जहां तक दुराचरणका सम्बन्ध है हम छोड़ेंगे किसीको नहीं।" रामलाल क्रोधित होकर ऐसी बातें कर रहा था।

रामनाथ—बात तो यह ठीक है, हमने भी तो आपसे पहले ही कहा था। पर आप तो देशोद्धारके चक्करमें पड़कर इसी चिन्तामें रहते थे कि मुसलमानोंकी सभा वालोंपर सही करनी चाहिये।

रामलाल—भाई समय समयकी बात है। जबतक ऊंट पहाड़के नीचे नहीं आता तबतक उसको अपनी ऊंचाईका

ज्ञान नहीं होता हमने तो यही सोचा था कि मुसलमानों को प्रसन्न रखेंगे तो हम अत्याचारियोंको पराजित कर सकेंगे।

रामनाथ—हम कब कहते हैं कि किसीको अप्रसन्न रखा जाय? पुराने लोग 'अधिकारी' का प्रश्न हर काममें रखते थे। आज तो सभी धान बाईस पसेरी हो रहा है। यदि 'अधिकारी' शब्दका प्रयोग किया जाय तो सब बिगड़ जाते हैं। हम लोगोंने किसी साधु महात्मासे बरी को जीतनेके लिये अस्त्रशस्त्र ग्रहण किया सही, पर उसका उपयोग न जाननेके कारण अपने ही ऊपर उसका वार करने लगे। यदि हम अधिकारी होते तो क्या ऐसी दुर्दशा होती?

रामलाल—भाई रामनाथ, समय निकल गया! अब तो अपनी अपनी ढफली और अपना अपना राग है! सच पूछ तो मैं ऊब गया हूं।

रामनाथ—हाँ, यह तो बतलाइये,बात क्या हुई—जो इतने वेदान्ती बन रहे हैं। क्या किसी मियाँसे पाला पड़ गया। बात यह है कि जिनसे आपको इतनी आशा थी वे ही आपको निराश कर रहे हैं। इसी लिये आपके दुःखकी नदी बह निकली है।

रामलाल—जो हो, अब तो अपने भाइयोंकी सेवा करने का विचार है। गोविन्दपुरका अत्याचार देखा नहीं जाता।

'गौसी' तो एकदम पागल हो गया। शकूरकी नीचता देखते हुए भी वह आँखें बन्द कर रहा है। खिलाफत के दिनों में यही 'गौसी' कितना 'भगत' बना था। आजकल इसकी लीला कुछ समझमें नहीं आती है।

रामनाथ—अब आखें खुलीं? समझो हमने, ठीक है ठीक 'शकूर' बड़ा पाजी है। उसकी नीचताका हाल खूब सुन रहा हूं। हम आप तो घर छोड़कर बाबू बन रहे हैं; केवल चिट्ठी से गांवका हाल मालूम होता है। गाँववालों पर क्या बीतता होगा यह वे ही जानें।

रामलाल—'सुखिया' पासिनका हाल तुमने सुना होगा। उस बिचारीने जब से अपनी दुर्दशाका हाल 'हीरा' से कहा है तबसे 'शकूर' और पागल हो रहा है।

रामनाथ—भगवानकी कृपा—अब अत्याचार का भंडा फोड़ होगा। हीराके पास पचासों आदमी हैं। उनमें इतना मेल है जितना वर्णाश्रम संघके मेम्बरोंमें उन दिनों था जब हिन्दू सभाका अधिवेशन कलकत्तेमें हो रहा था।

(२)

गांवके लोग पूरा नाम लेकर किसी को भी नहीं पुकारते —बड़ा हो या छोटा। रामनाथको नत्थू और सूर्यप्रसादको सुरजू, जिस प्रकार वे आसानीसे बोलते है उसी प्रकार गयासुद्दीनको 'गौसी' और 'शकूर' वेगको भी शकूर कहते हैं।

गयासुद्दीन गोविन्दपुरके जमीन्दार है। उनके एकही

लड़का है जिसका नाम शकूर है। शकूर अपने बापका इकलौता बेटा है। पाजीपनकी जितनी बातें हैं उसमें कूट कूटकर भरी हैं। गौसी मियां गोविन्दपुरमें दस आनेके हिस्सेदार हैं। उनके भाग्यसे उनका इलाका कच्ची रैयनसे आबाद है। लड़ाईके पहले 'गौसी' एक साधारण आदमी थे। सीधे सादे ढङ्गसे रहते थे और सबसे भैया बाबू कहकर बोलते थे। पर लड़ाईके दिनोंमें वे अचानक चमक उठे। दस बीस रंगरूट देकर उन्होंने अच्छा नाम कमाया। अफसरोंसे मिलने जुलनेका शौक उनको अभी से लगा। सन १९२० में तो वे खानबहादुर हो गये और आजकल आनरेरी मजिस्ट्रेट हैं।

अधिकारमद बड़ा बुरा होता है। इधर दो तीन सालसे तो उन्होंने अपना धर्म हिन्दुओंको दुखी करना समझ लिया है। अगर 'कानूनी' दबाव न होता तो वे जिजिया भी जारी करदेते।

सब कुछ होते हुए भी उनको एक बात नहीं सूझी कि कुर्मी, या कोइरी, अहीर, गड़ेरिया ये साधारण प्राणी नहीं होते। इनमें बड़ा बल होता है। इनको अपनी बिखरी शक्तिको इकट्ठा करनेमें देर नहीं लगती। ब्राह्मण क्षत्रिय तो सभामें व्याख्यान देनेके आदि हो रहे हैं। पर अभितक भी इनकी पञ्चायत गजब ढाती है।

(३)

हीरा एक अहीरका नाम है। हीरा के अखाड़े में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य सभी लड़ने आते हैं। सुखिया चमारिनको जब से शकूरने छेड़ा है तबसे हीराके यहाँ बड़ी भीड़ लगने लगी है। हीरा काम करता है, बकबक नहीं करता। यह बात देखी गयी है जिनको भगवान ने ताक़त दी है वे नम्र सी हो जाते हैं।

"गावकी इज्जत चली जाय और हम लोग मूछों पर ताव दें। धिक्कार है हमारी जिन्दगीको।" सांस भरते हुए सिर्फ हीराने इतना ही कहा।

अखाड़े पर बस इतनी ही बातें हुईं। सब लोग अपने अपने घर गये पर हीराको चैन नहीं। खाना पीना उसके लिये हराम हो गया। सीधे वह सुखियाके घर पहुँचा। सुखिया की मां लखियाने निकलकर बड़े प्रेमसे कहा भैया! कैसे?

हीरा—सुखिया कहाँ है?

लखिया—घरमें।

हीरा—बुला, देखें क्या मामिला है।

सुखिया—बाबू—कुछ नहीं।

हीरा ठीक कह। डर मत गौसी क्या करेगा? उसकी गर्दन उड़ादेंगे।

सुखिया—बाबू, (रोते हुए) शकर रोज छेड़ते , बोली

बोलते है। गंदी बातें करते है। कल तो मेरा कपड़ा पकड़ लिया पर मैं चिल्लाने लगी तब छोड़ कर भागे।

लखिया—भैया हीरा! अब हम कैसे अपने बच्चोंको बाहर भीतर भेजे। हम तो तीनों लोकसे गयी। (रोने लगी।)

हीरा—अच्छा रो मत। इसकी दवा हम कर देंगे। वीरका कलेजा कांपने लगा। आंखें लाल हो गयीं। एक तो दिन भरका भूखा, दूसरे स्वाभिमान की ज्वाला। अकेला गौसीके पास पहूँचा। सुखिया की दुर्दशाको कथा सुनायी।

गौसी—तो हम क्या करें! नौजवान लड़कीको वह क्यों बाहर भेजती है। क्यों नहीं उसको संभाल रखना, 'शकूर' नामर्द तो नहीं है। आखिर वह भी ज्वान हुआ। तुमको क्या पड़ी है, अपना काम देखो। या अगर तुम्हारी ताकत में हो तो मुकदमा दायर करो या चाहे जो करो जाओ। तुमको ऐसी बातें करनेकी हिम्मत कैसे हुई? तुम जबसे धूल लगाने लगे तबसे तीस मारखाँ हो गये। तुम्हारी इतनी हिम्मत चमार सियारकी तरफदारी करने चला है? जा हट फिर कभी शक्ल न दिखलाना।

हीरा—हीरा था, कांच नहीं। तड़ककर जबाव दिया मियांजी आगे मत बोलिये। मै जाता हूं, पर आप और शकूर दोनों अब दोजखमें चलनेकी तैयारी कीजिये। इतना कहते हुए हीरा झूमता झांमता घर पहुँचा।

गोसी—अबे शकूर ! सुनवे तू चमारिनके पीछे क्यों पड़ा। अगर हिम्मत हो तो हीराकी लड़की 'गौरी' को ला इस बदमाशकी हिम्मत देखें। अव्वल तो इनको बेदखल करो, गाँवमेंसे निकालो। इसकी इतनी हिम्मत ! अहीर होकर इतनी हिम्मत !

शकूर चला गया। बापकी बात सुनकर उसकी हिम्मत और बढ़ गयी।

(४)

अभी दो दिन भी नहीं हुए कि, गौरी और शकूरकी देखा देखी हो गयी। गौरी साँझ बिहान गोरू चराती है। उसकी ओर आँख उठाकर कोई देखेगा, इस बातका न तो हीराको ध्यान था न गौरीका।

शकूरने अपने ओछेपनके स्वरमें गौरीसे कुछ कहा। क्या कहा यह न तो गौरीने सुना न उसको कुछ उसका ख्याल हुआ। पर गौरी इतना अवश्य भांप गयी कि शकूर लुच्चा है। उसने सुखियाकी कहानी सुन रखी थी।

अहीरकी लड़की थी। ज्योंही शकूर करीब पहुँचा उसने तानकर तीन तमाचे जड़े। मियांजी को नानी याद आ गयी। गौरी अपनी गोरू हाँक कर घर लायी और हीरासे सब वृत्तान्त कह सुनाया। हीरा प्रसन्न तो हुए पर कहा कि ऐसे बदमाशको जीते क्यों छोड़ा।

शकूरने किसीसे अपनी दुर्गतिका हाल नहीं कहा। पर

ाल चौकड़ीका यह प्रधान था। अपने साथियोंको ले वह इस टोहमें रहने लगा कि 'गौरी' से बदला लें।

इधर अपने पिताको प्रसन्न करनेकी चिन्तामें 'गौरी' भी ाी हाथ कभी बाहर नहीं निकलती थी।

गौरी चरी काट रहती थी। शकूर पहुँचा।

शकूर—गौरी इतनी रातको चरी क्यों काटती है?

गौरी—हल चलाकर बैल आये हैं। उनके खानेको चारा ला रही हूं। क्या हुक्म है?

शकूर—तूने मुझे मारा क्यों?

गौरी—प्यारको भी मारना कहते हैं।

शकूर—मंजूर है।

गौरी—हां—हां।

शकूर—कब?

गौरी—कल?

शकूर—कहां?

गौरी—बस यहां।

(५)

"पिताजी लीजिये, शकूरका 'सिर'। अब तो आप प्रसन्न।" गौरीने हंसते हुए हीराको शकूरका सिर दिखाया।

हीरा—अच्छा बेटी। मैं गौसीका सिर तुझे देता हूँ। दुष्टोंका अन्त कर देना ही ठीक है एक तेज़ हथियार ले ' हीरा गौसीके घर पर पहुँचा। गौसी दो चार आद- मीयोंके बीचमें बैठे बातकर रहे थे। उस दिनके बाद आज

ही हीरा उनके यहाँ गया। गौरीने समझा कि अपने मतलब से आया है। सचमुच था भी बड़ा भारी मतलबी ?

हीरा—आपसे कुछ बात करनी हैं।

गौरी—बेदखलीके बारे में ?

हीरा—जी।

गौरी—जो स देना लेना हो दे लेकर तै करो। तुम तो बदमाशोंके सरदार हो तुम्हें रुपयों की क्या कमी—

हीरा—बाहर आइये। अलग कहने की बात है।

पहलवान की झपट साधारण नहीं होती। एकमें आनरेरी मजिस्ट्रेट साहब ने ज़मीन पर दाढ़ी रगड़नी शुरू की। दूसरी वारमें बस।

(६)

हीरा गौरी दोनोंने आत्म समर्पण कर दिया। मजिस्ट्रेट कुक साहब की मेम हीरा गौरीकी बहादुरी सुनकर बहुत प्रसन्न हुईं। पर हीरा गौरी दोनों ने अपना अपना अपराध स्वीकार कर लिया। इस लिये दोनोंको फाँसी हुई।

फांसीके दिन आँखोंमें आंसू भरे हुए गाँव भरके नरनारी एकत्र हो रहे थे। पर हीरा गौरी दोनों बड़े प्रसन्न थे मानो भगवानके विमान पर चढ़ कर वे स्वर्गको जा रहे है।

अन्तमें दोनोंने साथ ही लोगोंसे कहा—

"अत्याचारियोंके अत्याचारको सहन करनेसे मर मिटना स्वर्गका द्वार खोलना है। हम जाते हैं पर गोविन्दपुरमें किसीकी बहू बेटीको कोई नीच आँख उठाकर न देख सकेगा। इस बातको स्थापित करके जाते हैं।"